तृणजातकम्

प्राक्कथनम्

काव्यसाधना के अनन्तर नाटकजगत में यह मेरा दूसरा प्रयास है। इससे प्रथम "वत्सला" नाम छः अङ्क का पूर्ण नाटक मैं पाठकों को भेंट कर चुका हूं।

प्रस्तुत नाटक का आधार है मस्तिष्क में विविध विचारों का उद्वेलन एवं मन्थन। कोख में शिशु को छिपाए एवं पीठ पर स्तनपायी अर्भक को लटकाये, सजल नेत्रों में करुणा का भार लिये मातृशक्ति को आज भी हम राजमार्ग पर हाथ में फावड़ा लिये मिट्टी को खोदती या हथोड़े से रोड़ी कूटती हुई देखते हैं तो हृदय में एक व्यथा का भार, बादल में बिजली के समान कसक मारकर निकल जाता है। एक प्रश्न पैदा होता है कि क्या यह मातृशक्ति युगों तक इसी प्रकार निर्धनता के पाँव तले कुचली जाती रहेगी? क्या इस दयनीय स्थिति से इसका उद्धार कभी भी सम्भव न होगा? वह कौन-सी परिस्थितियां हैं जिनके अन्तर्गत इसका भाग्य न बदलने पा रहा है?

शोषण की प्रवृत्ति जिसे हम बन्धुआ मज़दूरी के रूप में आज भी जहां तहां देखते हैं, मानवीय दुर्बलता का सजीव दृष्टान्त है। क्या शासन के अङ्कुश विना मानव अपनी ही अन्तःप्रेरणा से इसे समाप्त न करना चाहेगा? मनुष्य के भीतर वह कौन-सी अदैवी शक्ति है जो उसे अपने पांवतले पिसते अपने ही भाई को देखकर आनन्द का अनुभव करवाती है? क्या इस पर विराम लगाना सम्भव न होगा?

क्या मनुष्य में संचयप्रवृत्ति का अभाव किसी सीमा तक स्वतः ही उसके दुख का कारण न बन जाता है? जिससे वह मकड़ी के समान स्वयं से बुने जाल में स्वयं ही बंध जाता है।

क्या हिन्दु जाति यह समझ पायगी कि जात-पात एवं अस्पृश्यता का अभिशाप उसे घुन के समान अन्दर ही अन्दर खाये

जा रहा है और वह पतन की ओर अग्रसर हो रही है ? उसे यह बोध हो पायगा कि इस प्रकार की दुर्बलताओं को त्यागे बिना उसे अपने प्राचीन गौरव को पुनः प्राप्त करना संभव न होगा ?

मनुष्य परिस्थितियों से जूझता है और जूझता ही चला जाता है। वह अपने अन्तःकरण के प्रतिकूल न कुछ देखना चाहता है, न सुनना चाहता है परन्तु फिर भी उसे अपनी इच्छा के विपरीत बहुत कुछ देखना पड़ता है, सुनना पड़ता है और सहन भी करना पड़ता है। जब वह संघर्ष करता करता हार जाता है तो उसे अपने पराजित मन को थामने लिये कोई अवलम्ब ढूंढना पड़ता है। इस आश्रय का नाम ही **"नियति"** है जिसका सहारा पा कर परिस्थितियों से लताड़ा मानव जीता आया है अन्यथा आज तक सभी मानव जिन्हें परिस्थितियां पराजित करती आई हैं, आत्महत्या के कूप में लुढ़कते चले जाते। श्रेष्ठी सम्पतराय को भी अन्ततोगत्वा **"नियति"** की शरण में ही जाना पड़ा।

मस्तिष्क में उदित इस चिन्तनजाल का परिणाम ही **"तृणजातकम्"** है जिसका विद्वत्पाठकवृन्द को नाटकीय धरातल पर मूल्यांकन करना होगा।

प्रस्तुत नाटक को संवारने में साधु आश्रम, होशियारपुर के शैक्षणिक विभाग के डा० शिवप्रसाद जी भारद्वाज, सहसंचालक प्रो० वेदव्यास जी एवं शास्त्री पृथुराम जी ने जो सहयोग मुझे दिया है उसके लिये मैं उनका आभारी हूं।

दिनाङ्क १-५-८३

विनीत—

दुर्गादत्त शास्त्री

नाटकप्रयुक्तछन्दांसि

मन्दाक्रान्ता
शार्दूलविक्रीडितम्
शिखरिणी
द्रुतविलम्बितम्
इन्द्रवज्रा
उपेन्द्रवज्रा
उपजातिः

नाटकपात्राणि

१.	सूत्रधारः	=	नाटकाभिनयसूचक
२.	नटी	=	सूत्रधारपत्नी
३.	सम्पतरायः	=	साहूकार
४.	रञ्जनः	=	बुनकर
५.	राधा	=	रञ्जन की पत्नी
६.	रमणः	=	धोबी
७.	रेवती	=	धोबी की पत्नी
८.	तृणजातः	=	रञ्जन (बुनकर) का पुत्र (रेवती—रमण से पालित)
९.	कल्पना	=	सम्पतराय की पुत्री
१०.	राघवः	=	सम्पतराय का पुत्र
११.	मायाधारी	=	घुमार
१२.	वासन्ती	=	सम्पतराय की पत्नी
१३.	सुजाता	=	राघव की पत्नी (सम्पतराय की पुत्रवधू)
१४.	गोपालः	=	सम्पतराय का भृत्य

तृणजातकम्

शाकाहारो विदुरभवनेऽनुष्ठितः स्नेहपूर्वं
लक्षाधीशो गुरुकुलसखाऽकारि धान्यैकमुष्ट्या ।
स्थित्वारण्ये बदरमशितं प्रीतिमाप्त्वा शबर्या
विष्णुः स स्यात् सकलभुवने पीडितानां सहायः ॥ १ ॥
(मन्दाक्रान्ता)

[नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः]

सूत्रधारः—[प्रविश्य, परिभ्रम्य, नेपथ्याभिमुखमवलोक्य] आर्ये ! इतस्तावत् । किमर्थं चिरायसे ?

नटी—[प्रविश्य वन्दमाना] आर्य ! इयमस्मि । आदिशतु भवान् मे करणीयम् ।

सूत्रधारः—प्रिये, नावगतं ते यदद्य "तृणजातक" नाटकस्याभिनयेन सभ्य-समाजः प्रसादनीयः ? तत् तत्परा भव त्वमपि स्वकार्यसाधने ।

नटी – आर्य ! क्षमतां भवान् । शुभ एष आरम्भः । अहं सर्वदा भवन्नि-योगमपेक्षे ।

सूत्रधारः—प्रिये ! प्रथमं त्वया किञ्चित् छन्दः प्रगीय सभ्यपरिषत् सभाजनीया । ततः प्रस्तुतं प्रस्तोष्यामः ।

नटी—एवमस्तु । गायामि तावत्—

धनैर्हीना लोका जगति विलपन्तो नयनगाः
प्रयासं कुर्वन्ति प्रतिदिनमहो रात्रिदिवसम् ।
अलं नैते दीनास्तदपि जठराग्निप्रशमने
विधातस्ते सृष्टाविह विषमता क्रीडति कथम् ॥ २ ॥
(शिखरिणी)

तृणजातक

शाकाहारी विदुर घर में जो बने प्यार से थे
श्रेष्ठी कीन्हा निज सुहृद को चावलों से क्षणों में।
बेरों का था उटज-शबरी स्नेह से भोग लाया
ऐसे स्वामी सब जगत में दीन के त्राणकर्ता ॥ १ ॥
(मन्दाक्रान्ता)

[नान्दी के अनन्तर सूत्रधार प्रवेश करता है]

सूत्रधार – [प्रवेश कर, घूम कर तथा नेपथ्य की ओर देख कर] आर्ये, इधर आओ, देर क्यों कर रही हो ?

नटी—[प्रवेश कर नमस्कार करती हुई] आर्य, मैं यह हूँ, मेरा काम बताइये, मुझे क्या करना है ?

सूत्रधार—प्रिये, क्या तुम्हें पता नहीं कि आज "तृणजातक" नाटक को रंगमंच पर लाकर सभ्य समाज को प्रसन्न करना है ? इसलिये तुम भी अपना कर्तव्य निभाने के लिये तैयार हो जाओ !

नटी—आर्य, क्षमा करें। यह आयोजन बहुत अच्छा है। मैं सदा आपकी आज्ञा की प्रतीक्षा में रहती हूँ।

सूत्रधार—प्रिये, पहले तुम कोई गीत गाकर सभ्य समाज का आदर करो, फिर हम नाटक को प्रारम्भ करेंगे।

नटी—ऐसा ही सही। मैं गाती हूँ—

बिना पैसे बैठे मनुज हम देखें सब कहीं
न पायें विश्राम, प्रतिपल रहें कार्यरत ही।
शमे तो भी नाहीं उदर इनके आग जलती
विधाता क्यों तूं ने सम-विषम कीन्हा जगत को ॥ २ ॥
(शिखरिणी)

सूत्रधारः—प्रिये, त्वया शिखरिण्यां शुभं गीतम् । [ततः सभ्यान् समालोक्य] शृणुत, शृणुत भोः सभासदः—

युगानुकूलः समयः स प्राप्तः प्रतीक्षितो दीनजनैर् विशेषात् ।
विलोक्य नाट्यं सुखमाप्नुवन्तु येन प्रयासः सफलोऽस्तु कर्तुः ॥ ३ ॥
(उपजातिः)

प्रस्तावना

[रञ्जनस्य मृत्तिकागेहम् । बाह्यभित्तौ लम्बमाने वेणौ जीर्ण-शीर्णवसनानि दृश्यन्ते । वानसामग्री—वेमा, कीलकानि, सूत्रग्रन्थयः, वातवस्त्राणि, अर्धवातवस्त्राणि, शलाकाः, सूत्र-चक्रम् च । प्राङ्गणकक्षे एका अजा कीलकबद्धा वर्तते । तस्या गोमयगुलिका इतस्ततः प्रसृताः सन्ति । पञ्चाशद् वर्षीयो रञ्जनस्तमालपात्रेण तमालपानं करोति । तमालपात्रस्य गुड़गुड़ाशब्दो गृहस्य निस्तब्धतां बाधते । चत्वारिंशद्वर्षीया राधा गर्भमावहते । तस्याः मलिनाकृतिस्तयोः दरिद्रतां दर्शयते ।]

राधा—[उपसृत्य पतिं प्रति] प्रिय, अनुमीयते स समयः प्राप्त एवेति ।

रञ्जनः—[सोत्कण्ठं तमालपात्रं परतः कृत्वा] अहो प्रिये ! किं ते प्रसवकालः सन्निहितः ?

राधा—प्रिय, जानामि यदद्य रात्रिर्विफला न गमिष्यति । परम् ··· ··· ।

रञ्जनः—प्रिये ! परं किम् ? किं कश्चित् अन्तरायः आशंक्यते त्वया ?

राधा—न प्रसवान्तरायं चिन्तयामि, परमुत्तमर्णोऽपि स्वकीयं धनमादातुं प्राप्त एवेति संभाव्यते ।

रञ्जनः—प्रिये, मयासौ एकशतमुद्राणाम् ऋणाय पुनः प्रार्थितोऽस्ति । मन्ये, दास्यत्येव ।

राधा—भर्तः ! दारिद्र्यं मुखं व्यादाय भक्षयितुम् इव प्रस्तुतं प्रतीयते परं नवागन्तुकस्य नूतनाशाभिर् ध्रियते मया सोत्साहं सोत्कण्ठं च । पश्यतु भवान्—

सूत्रधार—प्रिये, तुम ने "शिखरिणी" में बहुत अच्छा गाया है। [फिर सभा में बैठे लोगों को देख कर] सभासदो ! सुनिए, सुनिए—

है काल आया सबका दुलारा थे दीन भारी करते प्रतीक्षा।
सुखी बनें नाटक देख सारे प्रयासकर्ता चरितार्थ होवे ॥ ३ ॥
(उपजाति)

प्रस्तावना

[रञ्जन का कच्चा घर। बाहरी दीवार पर लटके हुए बांस पर फटे-पुराने कपड़े दिखाई देते हैं। कपड़ा बुनने का सामान—खड्डी, कीले, सूत की गांठे, बुने वा अधबुने थान, तकली, चरखा। आंगन के एक भाग में बकरी खूंटे से बंधी है। उसकी मेंगणे इधर उधर बिखरी पड़ी हैं। रञ्जन की आयु पचास वर्ष की है। वह हुक्का पी रहा है। हुक्के का गुड़गुड़ शब्द घर की चुप्पी को भंग कर रहा है। राधा की आयु चालीस वर्ष की हैं। वह गर्भवती है। उसकी मैली-कुचैली आकृति घर की गरीबी को प्रकट कर रही है।]

राधा—[पास आकर पति से] पतिदेव, प्रतीत होता है कि वह समय आ ही पहुँचा है।

रञ्जन—[उत्कण्ठा के साथ हुक्के को परे हटा कर] अरी प्रिये ! क्या, सच ही तेरा प्रसवकाल आ गया है ?

राधा—पतिदेव, मेरे विचार में आज की रात विफल न जाएगी। परन्तु ... ...।

रञ्जन—प्रिये, परन्तु क्या ? क्या तुम्हें किसी विघ्न का भय है ?

राधा—प्रसव में विघ्न का तो कोई भय नहीं, परन्तु साहूकार भी अपना धन लेने के लिये आने ही वाला है, ऐसा मैं सोचती हूँ।

रञ्जन—प्यारी, मैंने एक सौ रुपये के और कर्ज के लिये उससे प्रार्थना की है। शायद वह दे ही देगा।

राधा—पतिदेव, गरीबी मुंह खोले जैसे हमें खाने को तैयार दिखाई देती है। परन्तु नए अतिथि की नई आशाओं से जो मन में उत्साह और उत्कण्ठा है, उसी से मैं जी रही हूँ। देखिए—

एला गृहे नैव न चापि मुद्गा न क्षौद्रबिन्दुः शिशवे प्रदातुम् ।
न शर्करा नैव घृतस्य लेशस्तथापि चित्ते भवति प्रमोदः ॥ ४ ॥
(उपजातिः)

रञ्जनः—प्रिये ! किं कुर्याम् ! यदर्जयामि तत्कुसीदेनैव नीयते । अजां क्रेतुं मया द्विशतं मुद्राः पञ्चवर्षाणि पूर्वं धनिकात् आदत्ताः । साम्प्रतं द्विसहस्रे परिणताः ।

राधा—प्रिय, सत्यमेतत् । पश्यतु भवान्—

धनिनां वर्धते वित्तं वल्मीके पुत्तिका यथा ।
अधमर्णाः क्षयं यान्ति ऋणान्मुक्तिर्न जायते ॥ ५ ॥
(अनुष्टुप्)

रञ्जनः—प्रिये ! मा विकला भूः । अहं सर्वं साधयिष्ये । भाग्ययोगादावां चिराभिलषितमनोरथस्य निकटस्थौ भवावः । शिशुना सह ते किमपि कष्टं न स्यादिति मे प्रणः ।

राधा—पतिदेव, दारिद्रयं सुखं बाधते ।

रञ्जनः—परं कदाचित् दरिद्रतायाः मुक्तिरपि भविष्यति एव ।

राधा—भर्तः, आवां शिशोः शिक्षायास्तथा प्रबन्धं करिष्यावः यथा स विद्वान् भूत्वा दुःखं सुखे परिणयेत् ।

रञ्जनः—प्रिये, समयात्पूर्वं यत् चिन्त्यते तत्प्राप्तिः स्वप्नावलोकितमिव दुर्लभैव जायते । अतस्त्वमेवं मा भण । बिभेम्यहम् ।

राधा—अहो ! स प्राप्तः । [इत्यभिधाय त्वरया गेहान्तः प्रविशति]

[ततः सम्पतरायः प्रविशति । शिरसि उष्णीषम् । आजानु शाटिका । हस्ते यष्टिः । पादयोः उपानत् । मस्तके तिलकम् । कण्ठे अक्षमाला ।]

सम्पतरायः—भोः रञ्जन, त्वं चिरान्न दृष्टः । स्वार्थार्थं भवन्तः प्रत्यहं समायान्ति, परं यदाऽभीष्टं प्राप्यते तदा यथा नकुलात्सर्पः, काकात् उलूकश्च बिभेति तथैव उत्तमर्णाद् बिभ्यति । भवादृशाः खलाः

एला न मुंगी घर में न घी है, न खांड है वा मधु विन्दु नाहीं।
अभाव ऐसा मुझ को सताए, तो भी समाती मन में न फूली ॥ ४ ॥
(उपजाति)

रञ्जन—प्यारी, क्या करूँ। जो कमाता हूँ ब्याज ही खा जाता है। बकरी खरीदने के लिये आज से पांच साल पहले मैंने साहूकार से दो सौ रुपया लिया था, अब उसका दो हज़ार बन गया है।

राधा—पतिदेव, आप ठीक कहते हैं। देखो—

धन यह साहूकार का—बढ़ता है दिन रात।
ऋणी गये परलोक में—कर्ज न सिर से जात ॥ ५ ॥
(दोहा)

रञ्जन—प्यारी! घबराओ मत। मैं सब ठीक कर लूंगा। बड़े भाग्य से हम चिरकाल से मनचाहे मनोरथ को पा रहे हैं। बच्चे के साथ तुम्हें कोई भी कष्ट न होने दूंगा, यह मेरी प्रतिज्ञा है।

राधा—पतिदेव, गरीबी सुख नहीं देखने देती।

रञ्जन—पर कभी न कभी गरीबी से मुक्ति भी होगी ही।

राधा—पतिदेव, हम बच्चे की शिक्षा का ऐसा प्रबन्ध करेंगे कि वह विद्वान् होकर हमारे दुःख को सुख में बदल दे।

रञ्जन—प्रिये, समय से पूर्व जो बात सोची जाती है, उसकी प्राप्ति स्वप्न में देखी वस्तु के समान कठिन ही होती है। इस लिये तुम ऐसा मत कहो। मुझे डर लग रहा है।

राधा—हाय, वह तो आ गया। [ऐसा कह कर झोंपड़ी के अन्दर चली जाती है]

[फिर सम्पतराय आता है सिर पर पगड़ी, घुटने तक धोती, हाथ में लाठी, पैरों में जूती, माथे पर तिलक तथा गले में रुद्राक्षमाला पहन रखी है]

सम्पतराय—अरे रञ्जन, तुम बड़ी देर से न दिखाई दिये। स्वार्थ के लिये तुम प्रतिदिन आते थे। पर जब मन चाहा मिल गया है, तो जैसे नेवले से साँप और कौए से उल्लू डरता है, वैसे ही आप साहूकार से

परकीयं धनमादाय स्वीयमेव मन्यन्ते। प्रत्यावर्तनस्य स्वप्नोऽपि न जायते। न लज्जा, न सङ्कोचः, न भयम्। धिक् त्वाम्।

रञ्जनः—[कम्पमानः] महाराज! क्षमताम्। मम भार्यायाः प्रसवः सन्निहितो वर्तते। अत एवाहं नागन्तुं प्राभवम्।

सम्पतरायः—[यष्टिमुत्तोलयन्] प्रसवः? प्रसवेन मे किं प्रयोजनम्? प्रत्यावर्तयस्व मे धनम्। पश्य—

वयं प्रकुर्मो भवतां हितं तु प्रदाय वित्तं बहुयत्नलब्धम्।
परं न जानन्ति परोपकारं खलाः कृतघ्ना अधमा भवन्तः॥ ६॥

(उपेन्द्रवज्रा)

रञ्जनः—भगवन्! भवतां कृपयैव वयं जीवामः। मासाभ्यन्तरे कुसीदं दास्यामि। अद्यत्वे जनेभ्यः हस्तनिर्मितवस्त्राणि न रोचन्ते। सर्वे यन्त्रनिर्मितवसनेभ्य एव स्पृहयन्ति। व्यूत्या निर्वाहो न भवति। अतः प्रत्यहं राजमार्गे प्रस्तराणि तोडितुं गच्छामि। प्रस्तरः पुनान्

गृतिरिति बुनकर-कुक्ष दीर्घीन्या प्राप्ते।

सम्पतरायः—नाहं एतत् जानामि, रात्रावेव प्रबन्धः करणीयः। अहं प्रातर्मे धनम् आदायैवेतः प्रयास्यामि।

रञ्जनः—प्रभो! प्रयतिष्ये। [ससङ्कोचम्] भवन्तः रात्रौ कुत्र स्थास्यन्ति?

सम्पतरायः—अत्रैव ते गृहात् किष्कुचतुश्शते मे मित्रं वसति। तत्रैव रात्रिं नेष्यामि।

[इत्युक्त्वा प्रयाति]

यवनिकापातः

[तस्यामेव निशि रञ्जनस्य भार्या बालं प्रसूते। रञ्जनः हर्षातिरेकमना इतस्ततो भ्राम्यति सामयिकसामग्रीं च समाहरति। + तस्य गृहे ललना गायन्ति। ततः मित्रगृहे प्रसुप्तः श्रेष्ठी स्वप्नं पश्यति शृणोति च—"तन्तुवाय-पत्नीप्रसूतो बालस्ते तनयां परिणेष्यति" एवं स्वप्नबाधया धनिकस्य निद्राभङ्गः सञ्जायते।]

+ सामग्री सामग्री, च लभ्यते प्रवृत्तिः सा कृता इति तु नोक्तम्।

दूर-दूर भागने लगे। तुम जैसे दुष्ट पराये धन को लेकर अपना ही समझते हैं। लौटाने का तो स्वप्न भी न आता है। तुम को न लाज है, न संकोच, न डर। तुम्हें धिक्कार है।

रञ्जन—[कांपता हुआ] महाराज, क्षमा करो। मेरी पत्नी प्रसूता होने वाली है। इसी लिये मैं दर्शन न कर पाया।

सम्पतराय—[लाठी को हाथ से तोलता हुआ] तेरी पत्नी के प्रसव से मुझे क्या प्रयोजन है? मेरा पैसा वापस करो। देखो—

करें भलाई हम आपकी रे, दें वित्त जो है श्रम से कमाया।
कृतघ्न देखे तुम तो बड़े ही, जानें हमारा उपकार नाहीं॥ ६॥
(उपजाति)

रञ्जन—महाराज! हम आपकी कृपा से ही जीते हैं। एक महीने तक ब्याज दे दूंगा। आज लोगों को हाथ से बुना कपड़ा अच्छा नहीं लगता है। सब लोग मशीनी वस्त्र ही पहनना चाहते हैं। बुनकर-मजदूरी से निर्वाह नहीं होता है, इसलिये मैं सड़क पर पत्थर तोड़ने जाता हूँ।

सम्पतराय—यह मैं नहीं जानता हूँ। मेरे धन का आज रात को ही प्रबन्ध करना होगा। मैं सबेरे लेकर ही जाऊँगा।

रञ्जन—महाराज, प्रयत्न करूँगा। [संकोच के साथ] आप रात को कहां ठहरेंगे?

सम्पराय—यहां तेरे घर से थोड़ी दूर, चार सौ हाथ के अन्तर पर मेरा मित्र रहता है। मैं उसके पास रात को ठहरूंगा। [ऐसा कह कर चला जाता है]।

पर्दा गिरता है

[उसी रात को रञ्जन की स्त्री पुत्र को जन्म देती है। वह प्रसन्न मन से इधर-उधर घूमता है और समयोचित वस्तुओं को जुटाता है। उसके घर में स्त्रियां गीत गाती हैं। उधर मित्र के घर में सोया साहूकार स्वप्न देखता है। कोई अदृश्य आत्मा कहती है—"बुनकर की पत्नी ने जिस लड़के को जन्म दिया है, वह तेरी लड़की का पति बनेगा" स्वप्न से साहूकार की नींद खुल जाती है।]

सम्पतराय:—[सहसा उत्थाय चक्षुषी हस्ताभ्यां संस्पृशन् आत्मगतम्] हुं, कीदृशोऽयं स्वप्न: ! अधमर्णसुन: उत्तमर्णसुतां परिणेष्यति ? अहं वैश्य:, एष: शूद्र: । किं शूद्रसूनुर्वैश्यात्मजामुद्वोढुमर्हति ? नहि नहि, निरर्थकोऽयं स्वप्न: । नायं सत्यमावहते । स्वप्न: केवलं मनसो विकृते: परिणाम: ।

[तत: आकाशवाणी श्रूयते—"भो: श्रेष्ठिन् ! तव सुतां तेऽधमर्णसूनु: परिणेष्यति" (श्रुत्वा सातिशयं विकल: सम्पतराय: पुनरात्मगतम्) हुम्, एषा आकाशवाणी मे स्वप्नमेव प्रमाणयते ! किं शूद्रतनय: वैश्यतनुजां उद्वक्ष्यति ? एषोऽनर्थ: खलु उपस्थित: । एतस्मात् उत्पातात् विमुक्ते: कश्चिदुपाय-श्चिन्तनीय: । अस्तु, प्रभाते रञ्जनस्य गृहं गत्वा पश्यामि ।]

यवनिकापात:

सम्पतराय:—[प्रात: सूर्योदये स्वप्नावेशविक्षिप्तमनास्तन्तुवायस्य गृहमुपगम्य तं क्रोधेन पश्यन् भणति] किं भो: रञ्जन ! कृतस्त्वया मे धनस्य कश्चित् प्रबन्ध: ?

रञ्जन:—महाराज ! शुभ: समाचार: ।

सम्पतराय:—शुभ: समाचार: ? किं प्राप्तं कुतश्चिद् धनम् ?

रञ्जन:—भगवन् ! मङ्गलं मे गृहे ।

सम्पतराय:—नाहं ते गृहस्य मङ्गलं पृच्छामि । मम धनस्य कश्चित् प्रबन्ध: कृतो न वेति ब्रूहि ।

रञ्जन:—अन्नपते ! मम भार्या निशायां सुतं जनितवती ।

सम्पतराय:—[स्वप्नं स्मृत्वा सातिशयं विकल:] तव सुतेन न मे किमपि प्रयोजनम् । प्रतिदेहि मे धनम् अविलम्बम् । नाहं शून्यहस्त: जिगमिषामि ।

रञ्जन:—भगवन् ! दशदिवसानां समयं ददातु भवान् । अजां विक्रीय दास्यामि ।

सम्पतराय—[अकस्मात् उठ कर नेत्रों पर हाथ फेरता हुआ, मन ही मन में] अरे ! यह कैसा स्वप्न हुआ ! ऋणी का पुत्र ऋणदाता की लड़की को विवाह सकता है ? मैं वैश्य हूँ, यह शूद्र है। क्या शूद्र का पुत्र वैश्य की पुत्री के साथ परिणय कर सकता है ? नहीं, नहीं, यह स्वप्न निरर्थक है। स्वप्न केवल मन के विकार से ही होते हैं।

[फिर आकाशवाणी सुनाई देती है]

["अरे साहूकार ! तेरे ऋणी का पुत्र तेरी लड़की के साथ विवाह करेगा" (आकाशवाणी को सुन कर अत्यन्त व्याकुल हुआ सम्पतराय मन ही मन में) हैं, यह आकाशवाणी मेरे स्वप्न को ही प्रमाणित कर रही है ? क्या शूद्र का पुत्र वैश्य की लड़की के साथ विवाह करेगा ? यह तो बड़ा अनर्थ होगा। इस उपद्रव से छूटने का कोई उपाय सोचना होगा। अच्छा, प्रातःकाल रञ्जन के घर जाकर देखता हूँ।]

पर्दा गिरता है

सम्पतराय—[स्वप्न से व्याकुल मन वाला प्रातः ही रञ्जन के घर जाकर क्रोध से देखता हुआ] क्यों रे रञ्जन ! तुम ने मेरे धन का कोई प्रबन्ध किया है ?

रञ्जन—महाराज, शुभ समाचार है।

सम्पतराय—शुभ समाचार ? क्या कहीं से धन मिल गया ?

रञ्जन—महाराज ! मेरे घर में मंगल है।

सम्पतराय—मैं तेरे घर का मंगल नहीं पूछ रहा हूँ। मेरे धन का कोई प्रबन्ध हुआ है या नहीं, यह बता।

रञ्जन—अन्नदाता, मेरी स्त्री ने रात बालक को जन्म दिया है।

सम्पतराय—[स्वप्न को याद कर बहुत घबराया हुआ] तेरे बालक से मुझे क्या प्रयोजन है ? मेरे धन को जल्दी वापस कर। मैं खाली हाथ नहीं जाऊँगा।

रञ्जन—महाराज, मुझे दस दिन का अवसर दो। बकरी को बेच कर पूरा कर दूंगा।

सम्पतराय:—दशमे दिवसे न ददासि चेत्ते सकलपरिवार: मे गेहे बद्धदासत्वेन स्थास्यति। [इत्यभिधाय कुपित: गच्छति]

रञ्जन:—[श्रेष्ठिनि गते गायति]

हर्षेऽपि कष्टं धनहीनपुंसां भाग्ये न तेषां लिखितो विनोद:।
पुत्रे प्रजाते ऋणचिन्तयैव दु:खाब्धिमग्नो न तटं लभेऽहम्॥ ७॥
(इन्द्रवज्रा)

अथ च—

प्रासादस्था मधुरसभुज: कुक्कुरा: पीनकाया
गर्वोन्मत्ता: प्रतिदिनमहो स्वीयभाग्ये तु केचित्।
हट्टेष्वेते स्वधनमनुजा न क्षमा ग्रासमाप्तुं
सृष्टिं धाता कथमरचयन्न्यायहीनां नयज्ञ:?॥ ८॥
(मन्दाक्रान्ता)

आस्तां तावत्। एतस्य धनं तु दातव्यमेव भविष्यति। न दास्यामि चेत् कदाचित्सत्यमेवायं बद्धदासत्वेन निबध्नीयात्तदा महद्दु:खम् आपतिष्यति। पत्नी मे चेत् एतज्जानीयात्सा जीवनमेव त्यक्ष्यति।

[इत्यभिधाय गच्छति]

सम्पतराय:—[गेहं प्रत्यागच्छन् नैशस्वप्नसंस्मरणविकलमना: कतिचित्पदानि गत्वा उपविशति] हा! प्रताडितोऽहं स्वप्नेन। यथा मंत्रौषधिरुद्धवीर्य: सर्प: प्रताडकस्य अपकर्तुं न प्रभवति तथाहमपि स्वप्नस्य प्रतिकर्तुं न प्रभवामि। हन्त! विधिना लोकानां मनो दु:खयितुं स्वप्ना अपि सृष्टा:। सत्योऽयं चेत्स्वप्न:, मया किं कर्तव्यम्। [मस्तके क्षणं करं कृत्वा विचिन्त्य] यद्ययं बालक: मे हस्तगत: स्यात्तदैनं क्वचिन्नद्यां प्रक्षिप्य निराशङ्को भवेयम्। [कल्पनादोलादोलायमान: पुनश्चलति] दशदिवसानां दीर्घोऽयं समय: कथं नेष्यामि। [पुन: उपविशति] नाहं चिन्ताभारमादाय गेहं गमिष्यामि। एतच्चिन्ताविमुक्तेनैव मया गन्तव्यम्। यत्र कुत्रचित् कालं गमयिष्यामि। [इत्युत्थाय प्रयाति]

सम्पतराय—यदि ठीक दसमें दिन न दोगे तो तेरा सारा परिवार मेरे घर में बन्धुआ मजदूरी में रहेगा। [ऐसा कह कर गुस्से में चला जाता है]

रञ्जन—[साहूकार के चले जाने पर गाता है]—

गरीब का भाग्य बड़ा अनोखा, खुशी मिले न इनको कभी भी।
है पुत्र जाया पर कर्ज चिन्ता से मैं दबा हूं न मिले सहारा ॥ ७ ॥

(उपजाति)

और फिर—

कुत्ते भौंके, मधुरपय से पीन काया बनी है,
ऊँचे बैठें धनिक घर में भाग्य भारी सराहें।
हट्टों में हैं पर बिलखते अन्न पाने श्रमार्थी
सृष्टि ब्रह्मा किस विध रची न्याय तेरा कहां है? ॥ ८ ॥

(मन्दाक्रान्ता)

अच्छा, कोई बात नहीं। इसका धन तो मुझे देना ही होगा। न देने पर यदि सत्य ही हमें बन्धुआ मजदूरी में जकड़ ले, तो बड़ी आपत्ति आ जायगी। यदि राधा को ऐसा पता चला, तो वह प्राण ही त्याग देगी।

[ऐसा कह कर चला जाता है]

सम्पतराय—[घर को जाता हुआ रात के स्वप्न से व्याकुल मन वाला कुछ पैर चल कर बैठ जाता है] हाय! मुझे स्वप्न ने बहुत लताड़ा है। जैसे मन्त्र और औषधि के प्रभाव से सांप ताड़ना करने वाले का कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता है, ऐसे ही मैं भी स्वप्न का कुछ भी प्रतिकार न कर सकता हूँ। हाय! विधाता ने लोगों के मन को कष्ट पहुँचाने के लिये स्वप्न भी बना दिये। यदि यह स्वप्न सच्चा ही हो तो मुझे क्या करना चाहिए? [पल भर माथे पर हाथ रख कर तथा सोच कर] यदि यह बालक किसी प्रकार मेरे हाथ में आ जाय तो इसे किसी नदी में फैंक कर निश्चिन्त हो जाऊं। [कल्पना के झूले में झूलता हुआ फिर चलता है] दस दिन का समय बहुत लम्बा है, कैसे बिताऊंगा? [फिर बैठ जाता है] मैं चिन्ता भार के साथ घर न जाऊंगा। इस चिन्ता से मुक्त होकर ही मुझे जाना चाहिये। [उठकर चल पड़ता है]

[ततः तन्तुवायदम्पती शिशुना सह प्रविशतः]

रञ्जनः—[भार्यां प्रति] प्रिये ! अतिसुन्दरोऽयं शिशुः । एनं विलोक्य क्षुधातृष्णेऽपि शाम्यतः । अनुमीयते, नः दुरवस्था साम्प्रतं न चिरं स्थास्यति ।

राधा—पते, आवामेनं पालयित्वा सुनिश्चितं सुखितौ भविष्याव इति मे मतम् ।

रञ्जनः—परं धनिकः स्वीयधनं याचते, तस्य कः प्रबन्धः करणीयः ?

राधा—कतिचिद्दिवसानामधिकोऽवधिरादेयः ।

रञ्जनः—परं स न मन्यते ।

राधा—तदा भवान् किं चिन्तयति ?

रञ्जनः—अजां विक्रीय दातव्यमिति मे मनः ।

राधा—नहि नहि पते ! अजां विक्रीय शिशुं पयः कुतः पाययिष्यामि ? एतन्न व्यावहारिकम् ।

रञ्जनः—तर्हि केन विधिना धनिकाद् विमुक्तिः स्यात् ?

राधा—मासानन्तरम् अहमपि भवता सह राजमार्गे प्रस्तरकुट्टनाय यास्यामि । लब्धपारिश्रमिकेण कुसीदं दास्यावः ।

रञ्जनः—चेदसौ नाधिकं प्रतीक्षेत ?

राधा—अहं शिशुना सह तस्य पादयोः पतिष्यामि ।

रञ्जनः—यथा भवती मन्यते । [उभौ गच्छतः]

यवनिकापातः

सम्पतरायः—[दशमे दिवसे प्रविश्य उच्चैः स्वरेण] भोः भोः रञ्जन ! क्व भवसि ? [खट्वां निधाय उपविशति पुनश्च] भोः रञ्जन, अन्तः किं क्रियते त्वया ? बहिरायाहि ।

रञ्जनः—[प्रविश्य, नमस्कृत्य किञ्चित् कम्पमानः] भगवन्, उपस्थितोऽहं भवच्चरणयोः ।

[फिर रञ्जन और उसकी पत्नी बच्चे के साथ प्रवेश करते हैं]

रञ्जन—[भार्या के प्रति] प्रिये, यह बच्चा बहुत ही सुन्दर है। इसे देख कर भूख और प्यास मिटती है। प्रतीत होता है कि हमारे बुरे दिन अब शीघ्र ही भागने वाले हैं।

राधा—प्रिय, इसे पाल कर हम निश्चय ही सुखी हो जाएंगे, ऐसा मेरा मत है।

रञ्जन—परन्तु साहूकार अपना धन वापस माँगता है, उसका क्या प्रबन्ध करना चाहिये ?

राधा—कुछ दिन का और समय मांग लो।

रञ्जन—परन्तु वह मानने वाला नहीं है।

राधा—तो आप क्या सोचते हैं ?

रञ्जन—बकरी को बेच कर साहूकार से छुटकारा पा लेना चाहिये।

राधा—जी, नहीं, नहीं। बकरी को बेच कर बच्चे को दूध कहाँ से पिलाऊँगी ?

रञ्जन—तो साहूकार से कैसे छुटकारा पाया जाय ?

राधा—एक महीने के बाद मैं भी आपके साथ राजमार्ग पर रोड़ी कूटने के लिये चला करूँगी। जो मजदूरी मिलेगी, उससे ब्याज चुका देंगे।

रञ्जन—यदि वह अधिक देर प्रतीक्षा न करे ?

राधा—मैं बच्चे के साथ उसके पैरों पड़ जाऊँगी।

रञ्जन—जैसे तुम ठीक समझती हो। [दोनों चले जाते हैं]

पर्दा गिरता है

सम्पतराय—[दसवें दिन प्रवेश कर ऊँचे स्वर से] अरे रञ्जन ! तुम कहाँ हो ? [खाट को बिछा कर बैठ जाता है और फिर] अरे रञ्जन, अन्दर क्या कर रहे हो ? बाहर आओ।

रञ्जन—[प्रवेश कर और नमस्कार कर कांपता हुआ] महाराज, आपके चरणों में उपस्थित हूँ।

सम्पतराय:—श्रन्त: किं क्रियते स्म ?

रञ्जन:—श्रजायै घासप्रबन्धसंलग्न श्रासम् ।

सम्पतराय:—श्रजायै घासप्रबन्ध: ? न विक्रीता श्रजा त्वया ?

रञ्जन:—न हि महाराज ! शिशवे दुग्धविकल्प: न वर्तते ।

सम्पतराय:—तर्हि ऋणप्रत्यावर्तनस्य क: प्रबन्ध: कृतस्त्वया ?

रञ्जन:—श्रीमन्त: ! मासमेकं प्रतीक्षन्ताम् । एषु दिनेषु एकलोऽहं कार्यार्थं गच्छामि । काठिन्येन निर्वाहो भवति ।

सम्पतराय:—किं मासानन्तरं ते तातस्त्वया सह यास्यति ?

रञ्जन:—न हि भगवन् ! मम भार्या प्रसव-विश्रामे वर्तते । मासानन्तरं सापि किंचित् श्रर्जयिष्यति ।

सम्पतराय:—[स्वप्नपीडया बाध्यमान:] धृष्ट, पामर, पांसुल, धिक् त्वाम् । त्वं पुन: पुनरागमने ममायासं न गणयसि ? देहि मे धनम् । श्रहमनादाय न यास्यामि । न ददासि चेत् श्रवतिष्ठस्व मे गृहे भार्यया पुत्रेण च सहाजीवनं दास: ।

रञ्जन:—[आत्मगतम्] किं कुर्याम् । महति संकटसागरे पतितोऽहम् । शिशुं तावत् एतस्य चरणयोरर्पयामि । तदैष कदाचित् सदय: सन् मासमेक प्रतीक्षेत । [अभ्यन्तरे गत्वा शिशुमानीय धनिकस्य पादयो: उपस्थापयन् प्रकाशं ब्रूते] महाराज ! श्रयं शिशु: । चेत् भवान् न प्रतीक्षते, गृह्णातु एनम् ऋणस्य प्रत्यावर्तनं यावत् ।

सम्पतराय:—[सव्यङ्ग्यं किंचित् उपहस्य] श्रतिसुन्दरोऽयं शिशु: । एतस्य रूपलावण्यं समाकर्षति मे हृदयम् । आददामि एनम् । मे सदनेऽपि पुत्री जाता । उभौ सह क्रीडिष्यत: । कुसीदात्ते विमुक्ति:, परं मूलधनं तदवस्थमेव स्थास्यति । [शिशुमादाय सहसा निर्गच्छति]

रञ्जन:—[श्रेष्ठिनि गते अश्रुपूर्णनयनो विलपति] हा, हन्त ! मम कल्पना-विपरीतम् श्रयं तु सत्यमेव मे शिशुम् श्रपहृतवान् । हा ! मुषितोऽहम् । महाननर्थोऽयं सञ्जात: । दरिद्रते, धिक् त्वाम् । [ततो गायति]—

सम्पतराय—अन्दर क्या कर रहा था ?

रञ्जन—बकरी के लिये घास का प्रबन्ध कर रहा था।

सम्पतराय—बकरी के लिये घास का प्रबन्ध ? क्या तुम ने इसे बेचा नहीं ?

रञ्जन—नहीं महाराज, बच्चे के लिये दूध का विकल्प नहीं है।

सम्पतराय—तो कर्ज लौटाने का क्या प्रबन्ध किया है ?

रञ्जन—महाराज, एक महीना और प्रतीक्षा करो। इन दिनों में अकेला ही काम पर जाता हूँ। बड़ी कठिनाई से निर्वाह होता है।

सम्पतराय—तो महीने के बाद क्या तेरा बाप साथ जायगा ?

रञ्जन—नहीं महाराज, इस समय मेरी पत्नी प्रसवविश्राम में है। महीने के बाद वह भी कुछ कमाएगी ही।

सम्पतराय—[स्वप्न की पीड़ा का अनुभव करता हुआ] अरे नीच ! तुम्हें धिक्कार है, तुम बार-बार मेरे आने के कष्ट को नहीं समझते हो। मेरा पैसा दे दो। मैं बिन लिये न जाऊँगा। यदि नहीं दे सकते हो तो भार्या और पुत्र के साथ मेरे घर में बन्धक रहो।

रञ्जन—[मन ही मन] क्या करूँ ? बड़े संकट में पड़ गया। बच्चे को ही इसके पैरों पर रख देता हूँ। हो सकता है तब यह दया में आकर एक महीना प्रतीक्षा कर ले। [अन्दर से बच्चे को लाकर साहूकार के पैरों पर रखता हुआ बोलता है] महाराज, यह बच्चा है। यदि आप प्रतीक्षा नहीं कर सकते हो तो इसे ले जाइये।

सम्पतराय—[व्यङ्ग्य के साथ हंस कर] यह बच्चा बहुत सुन्दर है। इसका सौन्दर्य मेरे हृदय को खींच रहा है। इसे मैं ले लेता हूँ। मेरे घर में भी पुत्री जन्मी है, दोनों इकट्ठे खेलेंगे। ब्याज की तुम्हें छूट है। परन्तु मूलधन उसी प्रकार रहेगा [बच्चे को लेकर शीघ्र चला जाता है]

रञ्जन—[साहूकार के चले जाने पर विलाप करता है] हाय, हाय ! मेरी कल्पना के विपरीत यह तो सत्य ही मेरे बच्चे को ले गया। हाय, मैं ठगा गया। यह बहुत अनर्थ हुआ। गरीबी, तुझे धिक्कार है। (फिर गाता है) :—

दरिद्रतेयं महती पिशाची भुङ्क्ते दरिद्राँल्लभते न तृप्तिम् ।
शिशुर्मदीयस्त्वनया हृतोऽद्य हा दैव ! किं त्वं करुणानभिज्ञः ? ॥ ९ ॥
(उपजातिः)

हन्त ! ममाशादीपः निर्वापितः दरिद्रतया । भार्यां किं वदिष्यामि । तस्याः सकलाः सञ्चिता आशा अद्य धराशायिन्यः । शिशुना विना सा कथं प्राणान् धरिष्यति । हा दैव ! हा विधे ! [एवं विलपन् मूर्छितो निपतति]

यवनिकापातः

सम्पतरायः—[वाटे गच्छन् आत्मगतम्] लब्धोऽयं कण्टकः । साम्प्रतम् एनं हत्वा विश्रब्धो भविष्यामि । पश्यामि, स्वप्नदेवताः मे किं कुर्वन्ति । शूद्रसूनुः वैश्यात्मजामुद्वहेत्—कीदृशीयं कल्पना । [हसति] "हा हा हा" [अग्रतः काचिन्नदी समायाति ततश्चिन्तयति] । एनम् एतस्यां सरिति प्रक्षिपामि । मत्स्याः खादिष्यन्ति, भयं दूरे गमिष्यति । [इतस्ततः घासमादाय शिशुं तदावर्तितं कृत्वा सकलाः दिशः पश्यन्] किं कश्चिद् अवलोकते माम् ? नहि, न विद्यते अत्र कश्चिदपि । [शिशुः रोदिति ततो भणति] रुदिहि रुदिहि क्षणम् । अन्तिमं ते रोदनमिदम् । अचिरान्मत्स्यैर् निगलितो भविष्यसि, ततो न रोदिष्यसि । [सव्यङ्ग्यम्] स्वपिहि चिरनिद्रायाम् । भव मे दुहितुः कान्तः । [इति वदन् तृणावृतं शिशुमापगायां प्रक्षिप्य द्रुतगत्या प्रयाति]

[ततः आकाशवाणी श्रूयते]

भूते निष्ठा कथं युज्यते ?

रक्षा स्वयं यस्य कृता विधात्रा खड्गप्रहारैर्न हतः स जीवः ।
अङ्घ्रेरधस्तात् करिणः प्रयाता पिपीलिका प्राणिति भाग्ययोगात् ॥१०॥
(उपजातिः)

यवनिकापातः

[नदीतटम् । रेवती वस्त्राणि प्रक्षालयति । तस्याः कोऽपि शिशुर्नास्ति । अतः सा सर्वदा निराशाम्लानमुखी अवतिष्ठते । तया शिशुवसनान्यपि क्षालनायाधिगतानि । एकं शिशुवासो-हस्ते आदाय आत्मगतम्]

है तो पिशाची सच ही गरीबी, खाये दरिद्रों पर तृप्त ना हो।
मेरा चुराया शिशु पापिनी ने, हा दैव सीखी करुणा न तूं ने ॥ ९ ॥
(इन्द्रवज्रा)

हाय, मेरे आशादीपक को गरीबी ने बुझा दिया। मैं पत्नी को क्या कहूँगा। उसकी सभी संचित आशाएं आज धूल में मिल गईं। बच्चे के बिना वह कैसे जी सकेगी। हा दैव, हा विधे! [इस प्रकार विलाप करता हुआ मूर्छित होकर गिर जाता है]

पर्दा गिरता है

संपतराय—[रास्ते में जाता हुआ मन ही मन] यह कांटा मेरे हाथ में आ गया है। अब इसे मसल कर मैं निडर हो जाऊँगा। देखता हूँ, स्वप्न के देवता मेरा क्या कर लेते हैं। एक शूद्र का लड़का वैश्य की लड़की से विवाह करे। यह कैसी विडम्बना है। [हँसता है] "हा हा हा" [आगे एक नदी आने पर सोचता है] इसे इस नदी में फेंक देता हूँ। मछलियां खा लेंगी, भयं दूर हो जायगा। [इधर उधर से घास लेकर बच्चे को उसमें लपेट कर सब ओर देखता हुआ] क्या मुझे कोई देख रहा है? नहीं, यहां कोई भी नहीं है। [बच्चा रोता है तो कहता है] रो ले, रो ले पल भर। यह तेरा अन्तिम रोना है। शीघ्र ही मछलियां तुम्हें खा लेंगी तो न रोएगा। [व्यङ्ग्य के साथ] यहां चिरनिद्रा में सो जा। बनो मेरी पुत्री के पति! [इस प्रकार कहता हुआ तिनकों में लिपटे शिशु को नदी में फेंक कर जल्दी निकल जाता है।]

[फिर आकाशवाणी सुनाई देती है]

रक्षा विधाता जिस जीव की भी करे स्वयं नष्ट न हो कदापि।
हो पैर नीचे गज के चिऊँटी न प्राण जाएं यदि भाग्य सीधा ॥ १० ॥
(उपजाति)

पर्दा गिरता है

[नदी का तट। रेवती वस्त्र धो रही है। उसका कोई भी बच्चा नहीं है इसीलिए वह सदा निराश और उदास रहती है। उसके पास बच्चों के वस्त्र भी धोने के लिए आए हुए हैं। एक बच्चे के वस्त्र को हाथ में लेकर मन ही मन कहती है।]

रेवती—कीदृशं रमणीयं लघु वसनमिदम्। भाग्यशालिन्यस्ता मातरः या एवंविधकञ्चुकानि शिशून् परिधापयन्ति। [वसनं क्षालनदण्डेन द्विः त्रिः आहृत्य कल्पनालोके विचरन्ती] नहि नहि, नैतद् दण्डेन प्रताडनीयम्। कच्चित् शिशोः कोमलाङ्गं दूयेत। हस्ताभ्याम् आमर्द्य एवैतत् समुज्ज्वलं करोमि। कीदृशः निर्दयोऽयं विधिः। केषाञ्चित् सदनेषु पञ्च सप्त वा शिशवः क्रीडन्ति, परमपरे एकस्मादपि वञ्चिताः। निष्फलोऽयं मे कुक्षिः। बहु प्रार्थितं मया देवानामग्रतः परं सकलं विफलम्। न जाने विधात्रा कथमहम् एतद्भाग्याधिकारिणी न विहिता। मन्दभाग्याहम्। (निःश्वसन्ती गायति)—

ललना भाग्यशालिन्यः पाययन्ति पयः शिशून्।
अधमाहं समायाता निष्फलमेव संसृतौ॥ ११॥

(अनुष्टुप्)

[उपरिभागात् तृणपुल्लकं वहत् समायाति। विलोक्य पुनरात्मगतम्] किमिदं नद्यां प्रवहति ? किं तटप्रान्ते एकाधिकारं मन्यमाना सरित् ततो घासम् आहरन्त्याः कस्याश्चित् तरुण्यास्तृणपुल्लकं कोपेनापहृत्य आनयति ? हुम्, एतत् ममान्तिकम् एवायाति। गृह्णामि तावत्। पश्यामि, किमिदम्। [गृहीत्वा] अहो ! एतत्तु भारवत्। [शिशुः रोदिति] हुम्, पुल्लकान्तः कश्चिच्छिशुः ! केनायं तृणावृतः नद्यां प्रवाहितः ? मन्ये, काचित् कुमारी अजनयदिमम्। अथ च लोकलज्जाभयात् तटिन्यां प्रक्षिप्तवती। किं ममाङ्कमलङ्कर्तुमेव विधिनायं प्रेषितः ? नायं जलचरैर् निगलितः। दैव, अद्भुतं ते विलसितम्। [तृणान्यपवार्य, शिशुं निष्कास्य शुष्कवसनेनावृत्य पुनः पुनश्चुम्बन्ती] जात ! त्वं मे सुतः। अद्य मे भाग्योदयः सञ्जातः। अहं त्वां पुत्रवत् पालयिष्यामि। [साश्चर्यम्] हुम् ! मम स्तनाभ्यां दुग्धं निस्सरति। पुत्र ! पिब मे स्तन्यम्। वर्धस्व दिनं दिनं चन्द्रकलावत्। [ततश्चिन्तयति] अहं साम्प्रतं द्रुतमेव गच्छेयम्। अत्र नदीतटे न चिरं स्थातव्यम्। शिशुं काचिद् भूतबाधा ग्रसते चेत्, अहं किं करिष्यामि। भाग्ययोगाल्लब्धोऽयं निधिः प्रयत्नेन रक्षणीयः। [विचिन्त्य] अथवा

दिने दिने

रेवती—कितना सुन्दर यह छोटा सा वस्त्र है। वह माताएं धन्य हैं, जो इस प्रकार के वस्त्र बच्चों को पहनाती हैं। [कपड़े को पटकनी से दो-तीन बार प्रताड़ कर कल्पनालोक में विचरती हुई] नहीं, नहीं, इसे ताड़ना नहीं चाहिये। कहीं इससे बच्चे के कोमल अङ्ग को कष्ट न पहुंचे। हाथों से मसलकर ही इसे साफ करती हूं। विधाता कितना अन्यायी है। कई लोगों के घर में पांच-सात बच्चे खेलते हैं और कई एक के लिये भी तरसते हैं। मेरी कोख निष्फल ही सिद्ध हुई। मैंने देवतओं के आगे बहुत प्रार्थना की परन्तु सब व्यर्थ। पता नहीं, विधाता ने मुझे इस सौभाग्य की अधिकारिणी क्यों नहीं बनाया! मैं बहुत ही मन्दभागिनी हूँ।

[श्वास भरती हुई गाती है]

हैं भाग्यशाली वह नारियां ही जो बालकों को स्तन हैं पिलातीं।
मैं व्यर्थ आई इस जन्म में हूँ छाती लगाने शिशु मैं न पाया॥ ११॥
(इन्द्रवज्रा)

[ऊपर से घास का गट्ठा बहता हुआ आता है। रेवती उसे देख कर] यह नदी ऊपर से क्या ला रही है? क्या तटप्रान्त पर एकाधिकार को समझती हुई यह वहां से घास का आहरण करती हुई किसी युवती के घास के गट्ठे को गुस्से में उठा कर ला रही है? ओह! यह तो मेरे पास ही आ रहा है। इसे पकड़ती हूं। देखती हूँ, यह क्या है। [पकड़ कर] अरे, यह तो बहुत भारी है। [बच्चा रोता है] ओहो! घास के बीच कोई बच्चा है। इसे घास में लपेट कर किस ने नदी में फैंक दिया होगा? संभवतः इसे किसी कुमारी ने जन्म दिया होगा और फिर लोक-लाज के भय से नदी में बहा दिया होगा। क्या मेरी गोद को सुशोभित करने के लिये ही विधाता ने इसे भेजा है? इसे किसी जलचर ने खाया नहीं। हे दैव, तेरी लीला भी अनोखी ही है। [तिनकों को हटाकर बच्चे को निकाल कर, सूखे कपड़े में लपेट कर बार-बार चूमती हुई] बच्चे, तुम मेरे पुत्र हो। आज मेरे भाग्य जाग उठे। [आश्चर्य के साथ] ओहो! मेरे स्तनों से तो दूध बहने लगा। पुत्र, मेरा दूध पियो और चन्द्रकला के समान दिन-दिन बड़े होते जाओ। [फिर सोचती है] मुझे अब जल्दी ही घर चलना चाहिये। यहां नदी के किनारे देर तक रहना हितकर न होगा। बच्चे को कोई भूत लग गया, तो मैं क्या करूंगी? भाग्ययोग से मिले इस निधि की प्रयत्न से रक्षा करनी चाहिये। [पल भर सोच कर] अथवा

क्षणं प्रतीक्षे। असावपि वसनाहरणार्थं सरणिस्थ इति तर्कयामि। अथागते भर्तरि किं वदिष्यामि। [विचिन्त्य] "पते, प्रिया ते नदीतटे प्रसूता" इति भाषमाणा विनोदं करिष्यामि।

[ततः रमणः प्रविशति]

रमणः—प्रिये ! बहु विलम्बितं त्वया। अद्य भोजनस्यापि न चिन्तितम्। का वार्ता ? वक्षसा किं वहसि ?

रेवती—पते, प्रसूताहमत्रैव नदीतटे।

रमणः—अहो ! उपहासं करोषि ? किं गर्भमनाधायापि नार्यः कदाचित् शिशून् जनयन्ति ? पौराणिक-कथानां स्मारयसि मां किम् ?

रेवती—[शिशोः मुखात् वस्त्रमपसार्य] पते ! पश्य, पूर्णं आवयोः मनोरथः।

रमणः—[साश्चर्यम्] प्रिये ! परं न गर्भो धृतस्त्वया। विचित्रमिवमनुभूयते। विशदीकुरु प्रहेलिकाम्।

रेवती—भर्तः ! तृणपुल्लकावृतः अर्भकोऽयं नद्यां वहन् मयोपलब्धः।

रमणः—प्रिये, प्रसवव्यथामननुभूयैव त्वयाधिगतोऽयं निधिः। भाग्यं ते उदितम्।

रेवती—[उपहस्य] अथ न भवतः ?

रमणः—प्रिये, कथं न, मम तु त्वत्तोऽपि अधिकम्।

रेवती—पते ! बिभेम्यहं भूतबाधायाः। द्रुतमपसरणीयमितः।

रमणः—भार्ये ! सत्यं भणितं त्वया। अत्र वामभागे श्मशानमपि वर्तते। अतो न पलस्यापि विलम्बो विधेयः। अहं वसनान्याहरामि। [इतस्ततः प्रसृतवसनान्याहृत्य, ग्रन्थिं बद्ध्वा शिरसि च कृत्वा भणति] प्रिये, त्वम् अग्रतः भूयाः। अहं पश्चाद् गच्छामि।

कुछ क्षण प्रतीक्षा कर लेती हूँ। वह भी वस्त्र लेने के लिये रास्ते में आ ही रहा होगा। परन्तु पति के आने पर मैं क्या कहूँगी ? [पल भर सोच कर] "पतिदेव, तुम्हारी प्रिया नदी तट पर ही प्रसूता हो गई।" इस प्रकार कहती हुई उपहास करूँगी।

[फिर रमण प्रवेश करता है]

रमण—प्रिये, आज तूने बहुत देर कर दी। भोजन का भी कुछ न सोचा। क्या बात है ? यह छाती से क्या लगा रखा है ?

रेवती—पतिदेव, मैं नदीतट पर ही प्रसूता हो गई हूँ।

रमण—अरी, उपहास करती हो ? क्या गर्भ धारण किये विना भी कभी नारियां बच्चे को जन्म देती हैं ? क्या पौराणिक कथाओं की याद दिलाती हो ?

रेवती—[बच्चे के मुख से वस्त्र को उठा कर] पतिदेव, देखो, हमारा मनोरथ पूर्ण हो गया है।

रमण—[आश्चर्य के साथ] परन्तु तुम गर्भवती तो थी नहीं। यह बड़ी विचित्र बात है। इस पहेली को स्पष्ट करो।

रेवती—पतिदेव, तिनकों में लिपटा, नदी में बहता हुआ यह बच्चा मैंने पाया है।

रमण—प्रिये, प्रसवव्यथा का अनुभव किये विना ही यह निधि तुम्हें मिल गया। तुम्हारा भाग्य जाग उठा।

रेवती—[हँस कर] और आपका नहीं ?

रमण—प्रिये, क्यों नहीं। मेरा तो तुम से भी अधिक।

रेवती—पतिदेव, मुझे भूतबाधा का भय है। यहां से जल्दी निकल जाना चाहिये।

रमण—प्रिये तुम ने सच कहा है। यहां बाईं ओर को श्मशान भी है। इस लिये पल भर भी देर नहीं करनी चाहिये। मैं वस्त्रों को बटोरता हूँ। [इधर-उधर बिखरे वस्त्रों को बटोर कर, गठड़ी बांध कर और सिर पर रख कर] चलो प्रिये, तुम आगे-आगे चलो, मैं पीछे चलता हूँ।

रेवती—[प्रसन्नमुद्रायाम्] यथा भवान् आदिशति। [उभौ शिशुना सह निर्गच्छतः]

यवनिकापातः

[चतुर्दशवर्षाणि विगतानि। तस्यैव रजकस्य गृहम्। स्थाने स्थाने वसनानि दृश्यन्ते। नीलभाण्डम्, स्वेदनी, कटाहः, अङ्गारधानी, जलपूर्णघटाः, एकस्मिन् कोणे सरलीकरणयन्त्रमपि विद्यते]

रेवती—[प्रविश्य सरलीकरणयन्त्रं संस्पृश्य हस्ततापमनुभवन्ती सहसा करं परतः कृत्वा] अहो! अति तप्तमिदम्। सायं प्रदेय-वसनानि सरलानि करोमि तावत्। [यन्त्रेण वस्त्रभङ्गीहरणमारभते]

रमणः—[प्रविश्य] प्रिये! शुभं समाचारं ते श्रावयामि।

रेवती—[स्वकीयकार्यनिमग्ना तिर्यङ्नेत्रेण पतिं पश्यन्ती] श्रावय पते, श्रावय। अनुमिनोमि, तृणजातस्य परीक्षापरिणामो घोषितः।

रमणः—बालकः विश्वविद्यालये प्रथमं स्थानमधिगतवानिति अपारहर्षस्य विषयः।

रेवती—एतस्य मेधा सौन्दर्यं, सौन्दर्यं च मेधां स्पर्धते।

रमणः—प्रिये! रूपेऽयं कामः मेधायाञ्च वाचस्पतिः। बहुर्चितश्चतुर्दश-वर्षीयः बालोऽयं समाजे।

रेवती—भर्तः! दलितानामभ्युदयो न दूरे इति सम्भाव्यते। पश्यतु भवान्—

वटुरयं पठने निपुणः पते त्वित उतः सकलैः समुदाहृतः।
व्यवहृतावथ सौम्यतमो मतो भवति नौ सफलोऽद्य मनोरथः॥ १२॥

(द्रुतविलम्बितम्)

रमणः—प्रिये! सुचिराद् धनिकानां पदतलं निरीक्षमाणाः क्लान्ता वयम्। साम्प्रतं शोषणात् विमुक्ता भवाम इत्याश्वस्तं मनः किञ्चित्। पश्य—

रेवती—[प्रसन्नता में] जैसी आज्ञा। [दोनों बच्चे के साथ निकल जाते हैं।]

पर्दा गिरता है

[चौदह साल बीत चुके हैं। उसी धोबी का घर। स्थान-स्थान पर वस्त्र दिखाई देते हैं। नील चढ़ाने का पात्र। वस्त्र उबालने का पात्र। अंगीठी। पानी से भरे घड़े। एक कोणे में इस्तरी भी पड़ी है।]

रेवती—[प्रवेश करके इस्तरी का स्पर्श करके हस्तताप का अनुभव करती हुई हाथ को एकदम परे करके] अरे! यह तो बहुत गर्म हो गयी है। सायंकाल को देने योग्य वस्त्रों को तैयार करती हूँ। [इस्तरी से वस्त्रों की सिलवट को दूर करती है।]

रमण—[प्रवेश कर] प्रिये, मैं तुम्हें शुभ समाचार सुनाता हूँ।

रेवती—[अपने काम में मग्न, नेत्रप्रान्त से पति को देखती हुई] सुनाओ जी सुनाओ। तृणजात का परीक्षा परिणाम घोषित हुआ होगा, ऐसा अनुमान है।

रमण—उसने विश्वविद्यालय में प्रथम स्थान प्राप्त किया है, यह अपार हर्ष का विषय है।

रेवती—इसकी बुद्धि और सौन्दर्य आपस में स्पर्धा करते हैं।

रमण—प्रिये, यह सुन्दरता में कामदेव और बुद्धि से बृहस्पति है। चौदह वर्ष के इस बालक की समाज में बहुत चर्चा है।

रेवती—पतिदेव, गरीबों का उद्धार अब दूर नहीं है। ऐसी संभावना है। आप देखें :—

है प्रिय बालक कुशल पढ़ाई—विदित भया अब जन समुदाई।
बोलचाल में सभ्य सराहा—सुचिर मनोरथ हम अवगाहा ॥ १२ ॥
(चौपाई)

रमण—प्रिये, देर से हम धनवानों के तलवों को चाटते हुए ऊब गये हैं। अब शोषण से छूट रहे हैं। इससे मन को कुछ धीरज बंधा है। देखो :—

क्रान्तिस्त्वद्य समागतास्ति भुवने दूरे गतं शोषणं
वित्तं धारयतां न पादपतिना दृष्टाः क्वचिन्निर्धनाः ।
शिक्षां प्राप्य सुतस्तव प्रियकरश्चोच्चं पदं संस्पृशेद्
गेहं नौ भविता सुसज्जितमसौ कालः स्थितः प्राङ्गणे ॥१३॥
(शार्दूलविक्रीडितम्)

रेवती—भर्तः ! कुमारः साम्प्रतं पञ्चदशाब्दे प्रविशति । एतस्य परिणय-विषयेऽपि किञ्चिच्चिन्तनीयम् ।

रमणः—एकविंशतितमवर्षात् प्राक् बालानां विवाहः भारते निषिद्धः । अथ चार्थशून्येन हस्तेन किं करिष्यते ।

रेवती—भर्तः, पुत्रवधूं द्रष्टुमधीरं मे मनः । धनिकात् ऋणम् आयच्छाव: । शनैः शनैः प्रत्यावर्तनं विधास्यते ।

रमणः—परं कुटीरस्य निर्माणाय यदृणं गृहीतं तदद्यापि तदवस्थमेव वर्तते । कुसीदं प्रतिदिनं वर्धते । त्वं जानासि यदस्माकं देशे अद्यापि बद्धवास्यप्रथा वर्तते । निबद्धाश्चेन्न मुक्तिर्भविष्यति ।

रेवती—अस्माकमुत्तमर्णो विशेषतः क्रूरो भवति ।

रमणः—[ओष्ठयोः अंगुलिं कुर्वन्] किञ्चिन्नीचैर् भण । कदाचिच्छृणोति, महती आपद् आपतिष्यति ।

रेवती—भर्तः ! बिभेम्यहम् ।

रमणः—न भेतव्यं त्वया । अद्यागमनं न सम्भाव्यते ।

रेवती—अहो ! प्रिय, समायातः ।

रमणः—[ससंभ्रमम्] कः ?

रेवती—विडालः ।

रमणः—त्वमेवं भणसि यथा हृदयं वेपते । अपसारय एनं, दुग्धपात्रञ्च शिक्ये स्थापय ।

रेवती—प्रिय, न जानामि यद् अद्य मे मनः कथं विकलतां वहति ।

रमणः—अहं ते विकलतायाः किमपि कारणं न पश्यामि । स्त्रीणां स्वभाव एवैतादृशः । पश्य—

शोषित है, अब जागा भाई—न धनिक पदतल माथ घिसाई।
बालक पढ़ लिख ऊँचा जाई—घर फिर यह भी बहुत सुहाई ॥ १३ ॥

काल निकट अब आया प्यारी—भागत संकट निर्धन भारी।
समय कुटिल हम जो देखा—ओझल होवत अब है पेखा ॥ १४ ॥

(चौपाई)

रेवती—पतिदेव, बालक अब पन्द्रहवें वर्ष में प्रवेश कर रहा है। इसके विवाह के बारे में भी कुछ सोचना चाहिये।

रमण—प्रिये, इक्कीस वर्ष से पूर्व लड़कों का विवाह भारत में निषिद्ध है। और फिर हम खाली हाथ क्या करेंगे।

रेवती—प्रिय, पुत्रवधू को देखने के लिये मेरा मन अधीर है। साहूकार से कर्ज ले लेंगे। धीरे-धीरे लौटा देंगे।

रमण—परन्तु झोंपड़ी बनाने के लिये जो कर्ज लिया था वह अब तक भी वैसे का वैसा ही है। ब्याज प्रतिदिन बढ़ रहा है। तुम जानती हो कि हमारे देश में आज भी बन्धुआ मजदूरी की प्रथा जीवित है। यदि इस में फंस गये तो छूटना कठिन होगा।

रेवती—हमारा साहूकार विशेषकर क्रूर है।

रमण—[होठों पर अंगुलि रखता हुआ] जरा धीरे से बोलो। यदि कहीं सुन ले तो भारी संकट में फंस जाएंगे।

रेवती—पतिदेव, मुझे डर लग रहा है।

रमण—तुम डरो मत। आज आने की संभावना नहीं है।

रेवती—ओहो, वह आ गया।

रमण—[कुछ घबराहट के साथ] कौन ?

रेवती—बिलाव।

रमण—तुम ऐसे बोलती हो कि दिल कांपने लगता है। बिल्ले को भगा दो और दूध को छींके पर रख दो।

रेवती—पतिदेव, पता नहीं, आज मेरा मन क्यों घबरा रहा है।

रमण—मैं तेरी घबराहट का कोई कारण नहीं देखता हूं। स्त्रियों का स्वभाव ही ऐसा होता। देखो :—

नारीणां कोमलं चित्तं दूयते कारणं विना ।
खगस्य पक्षवेगेन कम्पते कोमला लता ।। १४ ।।

(अनुष्टुप्)

रेवती—पते, आवाभ्यां न कृतः स्वल्पोऽपि धनसंग्रहः । अतोऽद्य धनिकानां पदतले पतावः ।

रमणः—प्रिये ! नग्नः स्नातः किं निपीडयेत् ।

रेवती—भर्तः, स्वल्पात्स्वल्पमपि संग्रहीतुं शक्यते । पश्यतु भवान्—

वल्मीकमुच्चं कुरुतेऽत्र पुत्ती चिनोति कोशं सरघा च लघ्वी ।
नास्ते मनुष्यः किमु संग्रहार्थी जाड्यं तयोरस्ति पुमाँस्तु विज्ञः ।। १५ ।।

पुत्तीसरघे कथं जडे? ते अपि पुंवच्चेतते।

(उपजातिः)

रमणः—प्रिये ! रिक्तो हस्तो मुखं न याति ।

पश्य—

दीव्याम्यहं नैव न मद्यपायी पात्रे करस्यैव च भोजनं मे ।
तक्रं प्रभाते लवणं च सायं मुधा प्रवृत्ता मम भर्त्सने त्वम् ।। १६ ।।

रेवती—[करेण स्कन्धं संस्पृश्य] भर्तः ! क्षमस्व माम् । नाहं भवन्तं भर्त्सयामि । किं भारतीयनारी कदाचित्पतिं भर्त्सयितुं कामयते ? दैन्यपीड़िताः कदाचित् वाच्यावाच्यं विस्मरन्ति । क्षन्तव्याहं स्वामिन्, क्षन्तव्या ।

रमणः—प्रिये ! अधनानां गाथैव अद्भुता । तप्तलोहव्यथां सुतप्तं लोहमेव जानाति । अत एव तप्तं तप्तमालिङ्ग्य एकाकारतां प्रयाति । यथा तप्तलोहव्यथामजानन् मुद्गरस्तद् भृशं ताडयति एवमेवात्र धनवन्तोऽधनान् विताड्य आनन्दमनुभवन्ति ।

रेवती—भर्तः ! विधातुरयं दोषः ।

नारी कोमल दिल बड़ा—डरता है बिन हेत।
पक्षी के पर-वेग से लता प्रकंपन लेत ॥ १५ ॥
(दोहा)

रेवती—पतिदेव, हमने पैसे का थोड़ा भी संग्रह न किया इसलिए आज साहूकार के पाँव-तले पिस रहे हैं।

रमण—प्रिये, नंगा नहाये क्या और निचोड़े क्या।

रेवती—पतिदेव, थोड़े से थोड़ा भी बचाया जा सकता है।

आप देखिये :—

सियूंक छोटी फिर भी बनाये वामी बड़ा जो नभ में खड़ा हो।
छत्ता बनातीं मधु-मक्खियां भी जो छाज-जैसा सब को सुहाए ॥ १६ ॥
(इन्द्रवज्रा)

मनुष्य जोड़े यदि रोज थोड़ा न कष्ट भोगे धनहीनता के।
चिन्ता करें कीट भविष्य की तो क्यों ज्ञान धारें न मनुष्य ऐसा ॥१७॥
(उपजाति)

रमण—प्रिये, खाली हाथ मुँह में नहीं जाता है। देखो :—

मद्य चूत से ना है प्रीति—भोजन करतल करते बीती।
छांछ-लवण से रोट सुहाए—व्यर्थ भामिनि मुझ को डराए ॥ १८ ॥
(चौपाई)

रेवती—[हाथ से कंधे को छू कर] पतिदेव, क्षमा करो। मैं आप की भर्त्सना नहीं कर रही हूँ। क्या भारतीय नारी कभी पति की प्रताड़ना कर सकती है? दीन लोग कभी-कभी वाच्य-अवाच्य को भूल जाते हैं। मुझे क्षमा कीजिए।

रमण—प्रिये, गरीबों की कथा ही अनोखी है। तपे हुए लोहे की पीड़ा तपा हुआ लोहा ही जानता है। इसीलिये तपा हुआ तप्त से मिल कर एकाकार हो जाता है। जैसे तपे हुए लोहे की पीड़ा को न जानता हुआ हथौड़ा उसे बार-बार पीटता है इसी प्रकार धनवान निर्धनों को प्रताड़ित कर आनन्द लेते हैं।

रेवती—पतिदेव, यह विधाता का दोष है।

रमण:—नहि प्रिये, विधातुः सृष्टौ सर्वे नग्ना अवतरन्ति। ततश्च केचित् क्षौमवसनानि धारयन्ति, अपरेषां कन्थापि दुर्लभा। अस्माकं समाज-व्यवस्थैव चिरादेवं वर्तते।

रेवती—प्रिय, अद्यारभ्य यत्किञ्चिद् भवाँल्लभते, तस्य दशमांशो मह्यमर्पणीयः। शनैः शनैः किञ्चित् सञ्चितं भविष्यति। तेन मे पुत्रवध्वाः भूषणानि निर्मास्यन्ते।

रमण:—एवमेव भविष्यति।

सम्पतराय:—[प्रविश्य द्वारं खटखटायमानः] रमण ! [उच्चैः स्वरेण] अरे रमण ! किं करोषि त्वमभ्यन्तरे। उद्घाटय कपाटपुटम्।

रमण:—प्रिये ! स आगतः। गच्छाऽन्तः।

रेवती—एवमस्तु। [निर्गच्छति]

सम्पतराय:—[खट्वाथामुपविश्य] रमण ! त्वं कुसीदं दातुमपि नागतः। बहु प्रतीक्षितं मया। त्वादृशा अधमर्णा धनमादाय उत्तमर्णस्य मुखमपि न दिदृक्षन्ति। स्वार्थे सिद्धे उपकारिणोऽपि अपरिचिताः जायन्ते। सत्यमुक्तम्—

स्वार्थो यदा स्यात् हृदये निविष्टः
स्वार्थी समायाति पुनः पुनश्च।
सिद्धे निजार्थे न करोति वार्तां
संसार एवास्ति सदोष एषः ॥ १७ ॥

(इन्द्रवज्रा)

रमण:—श्रीमन्तः, क्षमन्ताम्। कार्यव्यस्ततयैव नागन्तुमपारयम्।

सम्पतराय:—परं यदा धनमादातुं समायातस्तदा नासीत्ते कार्यव्यस्तता ?

रमण:—[धनिकस्य मनः प्रसङ्गान्तरे निवेशयन्] भगवन् ! मे सुतः परीक्षायां सर्वप्रथमोऽतिष्ठत्।

सम्पतराय:—[सविस्मयम्] ते सुतः ? त्वया सुतः कुतः प्राप्तः ? किं क्रीतः कुतश्चित् ?

विस्मयस्य ?

रमण—नहीं प्रिये, विधाता की सृष्टि में सब नंगे हो आते हैं। तदनन्तर एक तो रेशमी वस्त्र पहनते हैं और दूसरों को गुदड़ी भी नहीं मिलती है। हमारे समाज की व्यवस्था ही देर से ऐसी चली आ रही है।

रेवती—पतिदेव, आज से लेकर आप जो भी कमाएं, उसका दसवां भाग मुझे दे दिया करो। धीरे-धीरे कुछ इकट्ठा हो जायगा उससे पुत्र-वधू के भूषण बन जाएंगे।

रमण—ऐसा ही होगा।

संपतराय—[प्रवेश कर द्वार को खटखटाता हुआ] रमण, [ऊँचे स्वर से] अरे रमण ! तुम अन्दर क्या कर रहे हो, किवाड़ खोलो।

रमण—प्रिये, वह आ गया। तुम अन्दर चली जाओ।

रेवती—ठीक है [निकल जाती है।]

संपतराय—[खाट पर बैठ कर] रमण, तुम ब्याज देने के लिये भी न आए। मैंने बहुत प्रतीक्षा की। आप जैसे कर्जदार धन लेकर साहूकार का मुंह भी न देखना चाहते हैं। स्वार्थ पूरा होने पर उपकृत भी अपरिचित हो जाते हैं। सच कहा है :—

हो स्वार्थ बैठा मन में तभी तो
आये बुलाये बिन भी निजार्थी।
जो काम सीधा अपना हुआ तो
न बात सीधी करता वही है ॥ १९ ॥

संसार ऐसा कुटिल स्वभावी
प्रारम्भ से ही हम देखते हैं।
भविष्य में क्या हम आश धारें
स्वार्थी न भूले उपकार कीन्हा ॥ २० ॥

(उपजाति)

रमण—श्रीमान् जी, क्षमा करो। काम की व्यस्तता से ही न आ सका।

संपतराय—पर जब पैसा लेने आया था क्या तब व्यस्तता न थी ?

रमण—[साहूकार के मन को प्रसंगान्तर में ले जाता हुआ] महाराज ! मेरा पुत्र परीक्षा में सर्वप्रथम आया है।

संपतराय—[अचम्भे के साथ] तेरा लड़का ? तुम ने लड़का कहां से पाया ? क्या कहीं से खरीद किया है ?

रमणः—नहि, भाग्ययोगाल्लब्धः ।

सम्पतरायः—भाग्ययोगः ! कीदृशो भाग्ययोगः ?

रमणः—मम भार्या नदीतटे वस्त्राणि क्षालयति स्म ।

सम्पतरायः—[तस्य पूर्णोत्तरमश्रुत्वैव विकलमनाः] ततः किम् ?

रमणः—तृणपुल्लकावृतः एकः शिशुर् नद्यां वहन् समायातः ।

सम्पतरायः—[आपादमस्तकं स्फुलिङ्गानि अनुभवन् सहसा आसनादुत्थाय] अथ च ते भार्यया गृहीतः ?

रमणः—[श्रेष्ठिनो मनोभावमजानन्] आम् श्रीमन्, आवां तं गृहमानीतवन्तौ ।

सम्पतरायः—[किञ्चित्कोपेन] परमहं प्रतिषण्मासानन्तरं ते गृहं समायामि । इतः पूर्वं त्वया रहस्यमिदं किमर्थं गोपायितम् ?

रमणः—श्रीमन्तः ! अप्रासङ्गिकवचनं न मे स्वभावः । सुपालितः स एव साम्प्रतं युवा वर्तते । न केवलमाकृतिरपि त्वेतस्य स्वभावोऽपि सातिशयं मधुरः । आकारयामि तावत् । [उच्चैः] तृणजात ! अरे तृणजात ! आगच्छ वत्स । इत आयाहि ।

तृणजातः—[नेपथ्यात्] आगच्छामि तात, आगच्छामि । [प्रविश्य पितरं नत्वा] एषोऽहं पितृदेव, आज्ञापयतु माम् ।

रमणः—जात, अभिवादयस्व श्रेष्ठिनम् । एतेषां कृपयैव वयं जीवामः ।

तृणजातः—[श्रेष्ठिनमुद्दिश्य] अभिवादयेऽहमत्रभवन्तम् ।

सम्पतरायः—[आशिषं विना बालमापादमस्तकं सेर्ष्यं पश्यन् आत्मगतम्] भवतु न वा भवतु । स एवायं कण्टकः । अस्तु, उपायान्तरं चिन्तयामि हन्तुमेनम् । [प्रकाशम्] रमण ! वर्षमिदं विगतम् । अहं न केवलं कुसीदमपि तु मूलधनमप्यादित्सामि ।

रमणः—[बालकं प्रति] वत्स ! त्वं प्रयाहि अभ्यन्तरम् ।

तृणजातः—यथाऽऽज्ञापयति भवान् । [इति गच्छति]

रमण—नहीं महाराज, भाग्ययोग से मिला है।

संपतराय—भाग्ययोग ! कैसा भाग्ययोग ?

रमण—मेरी पत्नी नदीतट पर वस्त्र धो रही थी।

संपतराय—[उसके पूर्ण उत्तर को बिना सुने ही व्याकुल मन वाला] फिर क्या हुआ ?

रमण—तिनकों में लिपटा एक बच्चा नदी में बहता हुआ आया।

संपतराय—[सिर से पैर तक चिंगारियों का अनुभव करता हुआ एकदम आसन से उठकर] और तुम्हारी पत्नी ने उसे पकड़ लिया ?

रमण—[साहूकार के मन के भाव को न जानता हुआ] हां श्रीमान् जी, हम उसे घर ले आए।

संपतराय—[कुछ गुस्से में] परन्तु मैं प्रति छः मास के अनन्तर तेरे घर आता हूँ। इससे पहले इस रहस्य को तुमने क्यों प्रकट न किया ?

रमण—श्रीमान् जी, बिना प्रसंग के कोई बात करना मेरा स्वभाव नहीं। पाला-पोसा वही बच्चा अब युवा है। केवल आकृति ही नहीं अपितु इसका स्वभाव भी बहुत ही मधुर है। मैं बुलाता हूँ। [ऊँचे से] तृणजात, रे तृणजात ! आओ बेटे, इधर आओ।

तृणजात—[नेपथ्य से] आता हूँ पिता जी, आता हूँ। [प्रवेश कर पिता को नमस्कार करके] पिता जी, मैं उपस्थित हूँ। आज्ञा कीजिये।

रमण—बेटे, श्रेष्ठी को नमस्कार करो। हम इनकी कृपा से जीते हैं।

तृणजात—[साहूकार को लक्ष्य करके] मैं आपको नमस्कार करता हूँ।

संपतराय—[आशीर्वाद दिये बिना ही लड़के को सिर से पैर तक ईर्ष्या से देखता हुआ मन ही मन] हो न हो, यह वही कांटा है। अच्छा, अब कोई दूसरा उपाय इसे मारने का सोचना होगा। [सामने] रमण ! पूरा वर्ष बीत चुका है। मैं केवल ब्याज ही नहीं अपितु मूलधन को भी लेना चाहता हूं।

रमण—[तृणजात के प्रति] पुत्र, तुम अन्दर चले जाओ।

तृणजात—जो आपकी आज्ञा [जाता है]।

सम्पतराय:—[सकोपम्] ममोक्तिमनादृत्य बालेन सह सम्भाषसे । अशिष्टस्त्वम् ।

रमण:—मर्षयतु भवान् । किञ्चित् प्रतीक्षताम् । प्रबन्धं करिष्ये ।

सम्पतराय:—नायं प्रतीक्षाया: प्रश्न: । अद्यैव देहि मे धनम् ।

रमण:—अद्य तु न सुकरं दातुम् ।

सम्पतराय:—धृष्ट ! कथं न सुकरम् । अहमनादाय न यास्यामि । न धनं चेत्प्रबन्धान्तरं कुरुष्व ।

रमण: – कीदृशं प्रबन्धान्तरम् ?

सम्पतराय:—[भ्रुवौ उन्नयन् यष्टिं चाङ्गुलिभिरुत्तोलयन्] सगर्वं भाषसे त्वं, यथाहं तेऽधमर्णस्त्वं च मे उत्तमर्ण: ।

रमण:—नहि भगवन् ! क्षन्तव्योऽहम् । भवत: वाचि कोऽन्तरायं कर्तुमर्हति ? वदतु भवान् ।

सम्पतराय:—प्रेषय एनं बालं मया सह । वर्षं यावन्मे सदने किंकरत्वमाचरति चेत्, त्वं कुसीदादुन्मुक्तो भविष्यसि ।

रमण:—परमावां तु एतस्य विवाहस्य चिन्तयाव: ।

सम्पतराय:—विवाहस्य का शीघ्रता वर्तते ?

रमण:—मम भार्या एतस्य वियोगे प्राणांस्त्यक्ष्यति ।

सम्पतराय:—[कोपाविष्ट:] तर्हि भवन्त: सर्वे मे गृहे आबद्धदासा: भवन्तु ।

रमण:—[आबद्धदासताया बिभ्यन्] क्षमस्व महाराज, क्षमस्व । आह्वयामि बालम् । [आकारयति] तृणजात ! अयि तृणजात ! आयाहि पुत्र, इत: ।

तृणजात:—[प्रविश्य] अयमस्मि तात ! आज्ञापयतु भवान् ।

रमण:—[सगद्गदम्] जात ! त्वं वर्षं यावत् श्रेष्ठिन: गृहे किंकर: स्थास्यसि ।

संपतराय—[क्रोध से] मेरे वचन की ओर ध्यान न देकर तुम लड़के से बात करते हो। बहुत असभ्य हो।

रमण—महाराज, क्षमा हो। कुछ देर प्रतीक्षा करने की कृपा करें। मैं प्रबन्ध कर दूंगा।

संपतराय—यह प्रतीक्षा का प्रश्न नहीं है। मेरा धन आज ही दे दो।

रमण—आज तो देना कठिन है।

संपतराय—नीच, कठिन क्यों है। मैं तो बिना पैसा लिये न जाऊँगा। यदि पैसा नहीं है तो दूसरा प्रबन्ध करो।

रमण—दूसरा क्या प्रबन्ध करूँ ?

संपतराय—[भौहों को चढ़ाता हुआ और लाठी को अंगुलियों से तोलता हुआ] तुम घमंड से बोल रहे हो। जैसे मैं तुम्हारा कर्जदार हूँ और तुम मेरे साहूकार हो।

रमण—नहीं महाराज, क्षमा करो। आपकी बात में कोई विघ्न नहीं कर सकता है।

संपतराय—तो फिर इस लड़के को मेरे साथ भेज दो। वर्ष भर मेरे घर में भृत्य बन कर रहेगा तो तुम्हें ब्याज से उन्मुक्त कर दूंगा।

रमण—पर हम तो इसके विवाह के बारे में सोच रहे हैं।

संपतराय—विवाह की इतनी जल्दी क्या है ?

रमण—मेरी स्त्री इसके वियोग में प्राण त्याग देगी।

संपतराय—[क्रोध में] तो आप सबको मेरे घर में बन्धुआ मजदूर बन कर रहना होगा।

रमण—[बन्धुआ मज़दूरी के नाम से घबराता हुआ] क्षमा करो महाराज, क्षमा करो। मैं लड़के को बुलाता हूँ। [बुलाता है] तृणजात, रे तृणजात ! बेटे इधर आओ।

तृणजात—पिता जी, मैं यह हूँ। आप आज्ञा करें।

रमण—[अवरुद्ध कंठ से] बच्चे, तुम्हें वर्ष भर साहूकार के घर में नौकर रहना होगा।

तृणजातः—तातादेशं सादरं पालयामि । पश्यन्तु—

जनकस्याज्ञया रामो जगाम गहनं वनम् ।
अहं कथं न गच्छेयं मन्दिरं श्रेष्ठिनः पितः ॥ १८ ॥
(अनुष्टुप्)

रमणः—[साश्रम्] वत्स, यथा यथायं महानुभावः समादिशति तथा तथा विधेयम् ।

तृणजातः—तात ! सर्वदा एतेषामाज्ञाकरः स्थास्यामि ।

रमणः—[श्रेष्ठिनं प्रति] महाराज ! एष यावन्मातरं पश्यति, भवान् क्षणं विश्राम्यतु ।

सम्पतरायः—तथास्तु । [इति प्रयाति]

रमणः—[सुतं प्रति] वत्स, प्रयाहि अभ्यन्तरं मातरं द्रष्टुम् ।

तृणजातः— यथाज्ञापयति भवान् [इति प्रयाति]

रमणः—[निःश्वसन् इतस्ततो भ्राम्यति] हा ! महद्दुःखम् । बालकेन विना निष्फलं जीवनम् ।

[नेपथ्ये सरोदनम्]

[वत्स, मां विहाय प्रयासि त्वम् । अहं त्वया विना कथं प्राणान् धरिष्ये । निर्दया एते जनाः किंकरान् भर्त्संयन्ति, प्रताडयन्ति दूषयन्ति च । पुत्र, त्वया सावधानेन स्थातव्यम् । एकं वर्षं मे युगतुल्यं गमिष्यति । देवास्त्वां सङ्कटेभ्यो रक्षिष्यन्ति ।]

तृणजातः—[मातरं विलोक्य पुनः प्रविश्य पितरं प्रति] तात, अभिवादयेऽहम् अत्रभवन्तम् ।

रमणः—पुत्र ! चिरायुराप्नुहि । किमनुज्ञातोऽसि मात्रा ?

तृणजातः— आं पितः, अनुमतोऽहं जनन्या भवदादेशमनुष्ठातुम् ।

सम्पतरायः—[अपरतः प्रविश्य] किं भोः रमण ! प्रस्तुतो बालो मामनुगन्तुम् ?

तृणजात—मैं पिता के आदेश का सादर पालन करता हूँ। देखिये :—

आज्ञा दशरथ मान कर—राम गये वनवास।
मैं क्यों जाऊँ ना भला—साहूकार के पास॥ २१॥

भारतभूमि परम्परा–सुत हों आज्ञाकार।
मात-पिता आदेश पर—देते सब कुछ वार॥ २२॥

(दोहा)

रमण—[आंसुओं के साथ] बच्चे, जैसे-जैसे यह महाराज आज्ञा करें वैसा ही करना।

तृणजात—पिता जी, सदा इनकी आज्ञा में रहूँगा।

रमण—[साहूकार के प्रति] महाराज, जब तक यह अपनी माता से मिलता है, आप थोड़ी देर विश्राम कर लें।

संपतराय—ऐसा ही ठीक है। [निकल जाता है।]

रमण—बच्चे, जाओ। अन्दर माता से मिल लो।

तृणजात—जैसे आपकी आज्ञा हो। [निकल जाता है।]

रमण—[हौंके भरता हुआ इधर-उधर घूमता है] हाय! बड़ा क्लेश है। क्या करूँ। बालक के बिना जीवन निष्फल है।

[नेपथ्य में रोने की आवाज के साथ]

[बच्चे, तुम मुझे छोड़ कर जा रहे हो। मैं तेरे बिना कैसे जीवित रहूँगी। यह निर्दयी लोग नौकरों की भर्त्सना करते हैं, प्रताड़ना करते हैं और झूठे लांछन लगाते हैं। पुत्र, तुमने सावधान होकर रहना। देवता संकट से तुम्हारी रक्षा करेंगे।]

तृणजात—[माता से मिलकर फिर प्रवेश करके] पिता जी, नमस्कार करता हूँ।

रमण—पुत्र, तुम्हारी आयु लम्बी हो। क्या माता से आज्ञा मिल गई है?

तृणजात—हां पिता जी, आपकी आज्ञा का पालन करने के लिये माता ने मुझे स्वीकृति दे दी है।

संपतराय—[दूसरी ओर से प्रवेश कर] क्यों रे रमण! लड़का मेरे साथ जाने को तैयार है?

रमणः—[साश्रम्] आं भगवन् ! उद्यतोऽयं बालो भवच्चरणरेखामनुसर्तुम् । गृह्णातु भवान् । [इति वदन् बालस्य हस्तं श्रेष्ठिनः करे धारयति]

सम्पतरायः—शोभनम् , गच्छाम्यहम् । [इति बालेन सह निर्गच्छति]

रमणः—[विलपन्] । हा ! नीतो मे सुतः । दरिद्रते धिक् त्वाम् । हन्त ! किं कुर्याम्—

सुते प्राप्ते काश्चिन्मम हृदय आशाः समुदिता
धनाढ्येनागत्य क्षणमपि न दत्तं विकसितुम् ।
तरोः शाखालग्नं नवमुकुलमासीद् विहसितुं
समीरेणाहत्य क्षितितलगतं हन्त विहितम् ॥ १९ ॥
(शिखरिणी)

रेवती—[प्रविश्य रुदन्ती] पते ! प्रेषितस्त्वया मे सुतः । स्फुटति मे हृदयम् । न जाने धनिकः एतस्य किं करिष्यति । हा ! हताहं दरिद्रतया । [मूर्छिता भूमौ निपतति]

रमणः—[मुखे जलबिन्दून्निपातयन्] प्रिये ! समाश्वसिहि । दरिद्रा अपि कदाचित् यातनोन्मुक्ताः स्थास्यन्ति । बालो वर्षानन्तरं पुनरागमिष्यति तावदहं धनिकस्य मूलधनस्यापि प्रबन्धं करिष्यामि ।

रेवती—भर्तः, न भवति मे विश्वासः । [निःश्वस्य] न जाने मे सुतस्य किं भविष्यति । पश्यतु भवान्—

प्रिय पते धनिनस्त्वधनैः सदा व्यवहरन्ति यथा पशवस्त्विमे ।
प्रविवदन्ति सदा सदनागता न परलोकभयं न च राजतः ॥ २० ॥

तृणपुटावृतकोमलविग्रहः सदयया सरिता समुपाहृतः ।
मम सुतः प्रियतापरिवर्धितस्त्वपहृतो धनिना धनगृध्नुना ॥ २१ ॥

पणकमेकमपीह न सञ्चितं त्ववगुणेन हतास्मि हृतात्मजा ।
कटु दिनं सदने समुपस्थितं मम विधे ! करुणां कुरु निर्धने ॥ २२ ॥
(द्रुतविलम्बितम्)

रमण—[आंसुओं के साथ] हां महाराज, लड़का आप की चरणरेखा पर चलने को तैयार है। आप इसे ले लीजिये। [इस प्रकार कहता हुआ लड़के का हाथ साहूकार के हाथ में दे देता है]

संपतराय—बहुत अच्छा ! मैं जाता हूँ। [लड़के के साथ निकल जाता है।]

रमण—हाय ! मेरे पुत्र को ले गया। गरीबी, तुझे धिक्कार है। हाय, मैं क्या करूँ :—

उगीं आशा थीं जो सुत जब मिला था सरित से
धनी ने आ घेरा पल भर दिया ना विकसने।
कली शाखा में थी कुछ कुछ खिली पुष्प बनने
तभी आई आन्धी महितल किया हाय उसको ॥ २३ ॥

(शिखरिणी)

रेवती—[प्रवेश कर रोती हुई] भर्ता, तुमने मेरे पुत्र को भेज दिया। मेरा हृदय फट रहा है। पता नहीं, साहूकार इसे क्या करेगा। हाय ! मुझे गरीबी ने मार दिया। [मूर्छित होकर धरती पर गिर जाती है।]

रमण—[मुख में जलबिन्दु गिराता हुआ] प्यारी, धीरज करो। गरीब कभी न कभी यातनाओं से छूटेंगे ही। लड़का एक वर्ष के बाद लौट आएगा तब तक मैं साहूकार के मूलधन का भी प्रबन्ध कर दूंगा।

रेवती—[आंसुओं से रुंधे गले से] पतिदेव, मुझे विश्वास नहीं होता है। [सांस भर कर] पता नहीं मेरे पुत्र का क्या बनेगा।

आप देखिये :—

धनी, निर्धन न मानव जानें, पशुसम ही वह इनको मानें।
घर पर आय डरावत भारी, लाज करत नहि देवत गारी ॥ २४ ॥

घास छिपा तन कोमल प्यारा, नदी किया मम सुत उपहारा।
हर लिया निर्दय सहूकारा—बिनु अनल ही वदन मम जारा ॥ २५ ॥

पैसा एक न संचय कीन्हा—अवगुण इस ने बहु दुख दीन्हा।
संकट घर पर है यह छाया—दया विहीन विधाता पाया ॥ २६ ॥

(चौपाई)

तत्र तस्य किं निमित्तको द्वेषः?

रमणः—प्रिये ! धैर्यमाधेहि । दीनानां प्रभुरेव रक्षकः । आयाहि, अन्तः प्रविशावः ।

यवनिकापातः

मृत्युः

सम्पतरायः—[प्रविश्य आत्मगतम्] नद्यां प्रक्षिप्तोऽपि नायं हृतः । न मत्स्यैर्भक्षितो न च मकरैर्निगलितः । मम सुतां चेदयं परिणयेन्महाननर्थो भविष्यति । शूद्रात्मजो वैश्यपुत्रीं कथमुद्वोढुमर्हति । अस्तु, राघवाय पत्रमेकं विलिख्य अस्य हस्ते प्रेषयामि । स भोजनं सविषं कृत्वा एनं भोजयिष्यति, तेनायं निश्चितं मरिष्यति । पश्यामि, नियतिः किं करोति । हुं नियतिः ! [उपविश्य पत्रलेखनं नाटयति ततश्च तृणजातमाह्वयति] भोः तृणजात ! क्व भवसि त्वम् ? आयाहि द्रुतम् ।

तृणजातः—अयमस्मि भगवन् ! अभिवादये अत्रभवन्तम् ।

सम्पतरायः—भोः तृणजात ! अहं सप्ताहं यावदितराधमर्णेभ्यो धनाहरणाय यास्यामि । त्वया एकलेन मे गृहं गन्तव्यम् । अहं सदनस्य पूर्णां स्थितिं ते दर्शयामि । एतत्पत्रं मे सुताय दातव्यम् । परमवधेयम्, मम पुत्रं विना न कोऽपि पत्रमिदमधीयीत । [इति पत्रं प्रयच्छति]

तृणजातः—[पत्रं गृहीत्वा] भगवन्, परेषां पत्रपठनं न शिष्टाचारः । एतद्विषये निराशङ्का भवन्तु अत्रभवन्तः । प्रासादस्य पूर्णां स्थितिं दर्शयन्तु मे येनाहं क्वचिद् भ्रान्तो न स्याम् ।

सम्पतरायः—पश्य, चतुश्शालं मे हर्म्यम् । प्रवेश-द्वारस्य कपाटौ लोहनिर्मितौ । एकस्मिन् कपाटफलके कुबेरचित्रमपरस्मिंश्च लक्ष्मीचित्रं वर्तते । गृहस्य दक्षिणतो गोष्ठं विद्यते । तत्र गावो रम्भन्ते । वामतोऽश्वशाला, तत्र घोटका ह्रेषन्ते । गृहमभितः विशालं सरः । अथ च गृहात् अर्धक्रोशे मे सुन्दरमुद्यानम् । यदा त्वम् उद्यानं प्राप्स्यसि, तदा जानीहि यद्गेहस्य निकटमेव प्राप्तः । उद्याने मे पुत्री प्रत्यहं पुष्पावचयाय समायाति । गच्छ साम्प्रतं निर्दिष्टेन पथा ।

तृणजातः—यथाज्ञापयन्ति अत्रभवन्तः । [इति शिरसा प्रणम्य निर्याति]

रमण—प्रिये, धीरज करो। गरीबों का प्रभु ही सहारा है। आओ, अन्दर चलें। [दोनों चले जाते हैं।]

पर्दा गिरता है

संपतराय—[प्रवेश कर मन ही मन में] नदी में फेंकने से भी यह मरा नहीं। न इसे मछलियों ने खाया और न ही मगरमच्छों ने निगला। यदि इसका विवाह मेरी पुत्री के साथ हो तो यह बड़ा अनर्थ होगा। एक शूद्रपुत्र वैश्य की पुत्री के साथ विवाह कैसे कर सकता है। अच्छा, राघव को एक पत्र लिख कर इसके हाथ भेज देता हूँ। वह भोजन में विष मिला कर इसे खिला देगा और यह मर जायगा। देखता हूँ, होनहार क्या कर लेती है। हुँ होनहार! [बैठ कर पत्र लिखता है और फिर तृणजात को बुलाता है।] रे तृणजात, तुम किधर हो। जल्दी इधर आओ।

तृणजात—[प्रवेश कर] महाराज, मैं यह हूँ। नमस्कार हो।

संपतराय—देखो तृणजात! मैं एक सप्ताह तक दूसरे कर्जदारों से धन उगाहने के लिये जा रहा हूँ। तुम्हें अकेले ही मेरे घर जाना होगा। मैं तुम्हें घर की सारी स्थिति बता देता हूँ। यह पत्र मेरे पुत्र को दे देना। परन्तु ध्यान रहे मेरे पुत्र के अतिरिक्त कोई भी इस पत्र को पढ़ने न पाए। [पत्र को दे देता है।]

तृणजात—[पत्र को लेकर] महाराज! दूसरों के पत्र का पढ़ना शिष्टाचार नहीं है। इस विषय में आप तनिक भी शंका न करें। आप घर की पूरी स्थिति मुझे बता दें जिससे मैं कहीं भूल न जाऊँ।

संपतराय—देखो, मेरे महल के चारों ओर कमरे हैं। ड्योढ़ी के किवाड़ लोहे के बने हुए हैं। एक किवाड़ पर कुबेर का चित्र है और दूसरे पर लक्ष्मी का। घर की दाईं ओर गौशाला है। वहां गौएं रंभाती हैं। बाईं ओर घुड़साल है। वहां घोड़े हिनहिनाते हैं। घर के सामने एक बड़ा तालाब है। और फिर घर से आध कोस पर मेरा सुन्दर बाग है। जब बाग में पहुँचोगे तो समझना कि तुम घर के समीप ही पहुँच गये हो। बाग में मेरी पुत्री प्रतिदिन सायं को फूल चुनने आती है। अब जो रास्ता बताया है उसी से चले जाओ।

तृणजात—जैसे आपकी आज्ञा। [सिर झुका कर चला जाता है।]

सम्पतराय:—[यूनि गते शिरसि हस्तमाधाय आत्मगतम्] अहो ! मया प्रमाद: कृत: । "पुत्री उद्यानमायाति" नैतद् वाच्यमासीत् । प्रमाद:, प्रमाद: । नहि नहि, आस्तां तावत् । व्यर्थमेवाहं भ्रमाब्धो निमज्जामि । मम सुताया एतेन किं प्रयोजनम् । न किमपि विपरीतं स्थास्यति । सप्ताहानन्तरं यदाहं यास्यामि, एष परलोकं प्रस्थितो भविष्यति । [इति निर्गच्छति]

यवनिकापात:

[ज्येष्ठमासस्य मध्याह्न: । एकं रम्यमुद्यानम् । लतासु पुष्प-गन्धो मनो हरति । पिककूजितं कर्णौ तर्पयति । चटका इतस्तत: उड्डयन्ते, शुकैरितं चित्तं विनोदयति । निर्झराणां कलकल: हृदयं सान्त्वयति । आम्रवृक्षेषु लघुफलानि पाकसमयं प्रतीक्षन्ते । कदलीपादपेषु कदलीफलगुच्छकानि भूमिं स्प्रष्टुमधीरतां दर्शयन्ते । मालतीलताश्वेतकुसुमानि नभसो नक्षत्राणि स्पर्धन्ते । लतासु पट्पद-गुञ्जितं मनश्चञ्चलं विदधाति]

तृणजात:—[उद्यानं प्रविश्यात्मगतम्] अहो ! अतिरमणीयमुद्यानमिदम् । पुरन्दरस्य नन्दनमपि अतिशेते वाटिकेयम् । किमत्राप्सरसो निवसन्ति ? प्रतीयते, स्वामिनो गृहं साम्प्रतम् अभ्यर्णे एव वर्तते । अस्तु, क्लान्तोऽहं मध्याह्नातपेन । जलं पीत्वा घटिकां यावत् विश्राम्यामि । स्वामिनो गेहे कुतो विश्रान्तिमुपलप्स्ये । न जाने तत्र मया का का कृतिरनुष्ठेया । [निर्झरात् जलं पीत्वा] अहो ! अति स्वादु सलिलमिदम् । अमृतमिव पीतमनुभूयते मया । अति-मधुरेयं तरुच्छाया । [इति तरुतले पातितकाय: शीतलपवनेन शान्तमना निद्रितो भवति]

उद्यानं वाटिका न भवति।

[तत: कल्पना उद्यानं प्रविशति]

कल्पना—[आत्मगतम्] अद्य न जाने मनसा कथं प्रेरितम् । सायंकालात् किञ्चित्प्रागेवोद्यानं प्रविष्टा । अस्तु, स्वीयमेवोपवनमिदम् । न कापि भीतिरत्राशङ्क्यते । भ्रमामि तावल्लताकुञ्जेषु श्रमनिवारणाय ।

संपतराय—[युवक के चले जाने पर सिर पर हाथ रख कर मन ही मन] ओहो ! मुझ से तो बहुत भूल हो गई। "पुत्री बाग में आती है" यह न कहना चाहिये था। भूल, भूल। अच्छा, नहीं नहीं, कोई बात नहीं। मैं व्यर्थ ही भ्रमसागर में डूब रहा हूँ। मेरी लड़की का इससे क्या प्रयोजन है। कुछ भी विपरीत न होगा। सप्ताह के अनन्तर जब जाऊँगा तब तक यह परलोक जा चुका होगा। अब यहां से चलना चाहिये। [निकल जाता है।]

पर्दा गिरता है

[जेठ महीने की दोपहरी। एक सुन्दर बाग। बेलों पर फूल की गन्ध मन को हर रही है। कोयल की कू-कू कानों को तृप्त कर रही है। चिड़ियां इधर-उधर उड़ रही हैं। तोते की वाणी मन को प्रसन्न कर रही है। झरनों का कलकल हृदय को सान्त्वना दे रहा है। आम के पेड़ों पर छोटे-छोटे फल पकने की प्रतीक्षा में हैं। केलों के पौदों पर फलों के गुच्छे धरती को छूने के लिये अधीर दीख रहे हैं। मालती की बेल पर सफेद फूल आसमान के तारों से स्पर्धा कर रहे हैं। बेलों पर भौंरों की गुंजार मन को चंचल बना रही है।]

तृणजात—[बाग में प्रवेश कर के मन ही मन] अरे, यह बाग तो बहुत ही सुन्दर है। यह तो इन्द्र के नन्दन वन को भी तिरस्कृत रहा है। क्या यहां अपसराएं रहती हैं ? संभवत: मैं अब स्वामी के घर के पास ही आ गया हूँ। पानी पीकर घड़ी भर विश्राम कर लेता हूँ। मालिक के घर आराम कहां मिलेगा। पता नहीं, वहां मुझे क्या-क्या काम करना होगा। [झरने से पानी पीकर] अरे ! यह पानी तो बहुत स्वादिष्ट है। मुझे अमृतपान जैसा अनुभव हो रहा है। इस पेड़ की छाया बहुत मीठी है। [पेड़ के नीचे लेट जाता है। शीतल वायु से मन को शान्ति मिलती है और नींद आ जाती है।]

[फिर कल्पना बाग में प्रवेश करती है]

कल्पना—[मन ही मन] आज न जाने मन ने कैसे प्रेरणा दी कि मैं सायंकाल से कुछ पहले ही बाग में आ गई हूँ। अच्छा, कोई बात नहीं, यह अपना ही बाग है। इसमें किसी का डर नहीं है। तब तक थकावट दूर करने के लिये बेलों के कुंजों में

[दुकूलेन स्वेदं परिमार्जयति । भ्रमन्त्याः दृष्टिः सुप्ते यूनि गच्छति । तं विलोक्य ससंभ्रमम्] अहो ! कोऽयं प्रसुप्तोऽत्र ? मन्दं मन्दं गच्छामि । कच्चित् पदचापेन जागृयात् ।

[उपगम्य] अहो ! अतिरूपवानयं युवा । अस्य मस्तके प्राकृतिक-तिलकमपि वर्तते । ज्ञायते, अस्य भाग्ये नूनमस्ति कश्चिद्राजयोगः । नेदृग्विधः कश्चित्सुन्दरो युवा मे दृष्टिपथमवतरितोऽद्यावधि । प्रतीयते, शंकरस्य तृतीयाक्ष्णा दग्धः कामः पुनर्जीवितः । रतिः साम्प्रतं न विलपिष्यति । अस्यावयवसन्निवेशो हरति मे हृदयम् । मम पिता शतं प्रयतित्वापि नेदृग्विधं वरं मां प्रापयितुं पारयति । वृतोऽयं मया पतिः । मम गौर्युपासना सफलतां गता । [किञ्चिन्निकटे गत्वा] अस्य कञ्चुकास्ये किमिदं वर्तते । पश्यामि तावत् । गाढं प्रसुप्तोऽयम् । न भयम् । [पाटवेन पत्रं निष्कास्य] एतत् पत्रमस्ति । पठामि तावत् । किमक्षरितमेतस्मिन् । [क्षणं पठित्वा स्तब्धा तर्जनीं मुखे निवेश्य] हा हा ! पित्रा मे सहोदर एनं हन्तुमादिष्टः ? हन्त ! निष्करुणो मे तातः । उररीकृतोऽयं मया पतिः । रक्षिष्याम्येनम् । परं कथमुद्धरिष्ये इममापदः । [क्षणं विचिन्त्य] अस्तु, लब्धः उपायः । पत्रमेतद् विदार्य पितुः पक्षतः पत्रान्तरं लिखामि । "ममागमनात्पूर्वं कल्पनाया एतेन सह विवाहः कार्यः" । एवमेतस्य प्राणरक्षा सुकरा भविष्यति । [ततः पत्रान्तरं विलिख्य तच्च पुनस्तस्य कञ्चुकास्ये निवेशयति । ततः केतकीपुष्पमादाय यूनः दक्षिणहस्तेन स्पृष्टं कृत्वा वेण्यां धारयति । ततश्च गच्छति ।]

तृणजातः—[निद्रां विहायात्मगतम्] अहो चिरं प्रसुप्तोऽहम् । भानुरस्ताचलं प्रति समुत्सको दृश्यते । मया अपरिचितस्थाने गन्तव्यम् । अतः पलमात्रविलम्बोऽपि न हितकरः ।

[उत्थाय प्रयाति]

यवनिकापातः

घूमती हूँ। [दुपट्टे से पसीने को पोंछती है। भ्रमण करती हुई की दृष्टि सोए हुए युवक पर जाती है, उसे देख कर कुछ घबराहट के साथ] अरे! यह कौन सोया हुआ है। धीरे-धीरे जाती हूँ। कहीं मेरे पैरों की आहट से जाग न पड़े। [पास जा कर] अरे! यह तो बहुत ही सुन्दर युवक है। इसके मस्तक पर स्वाभाविक तिलक भी है। इसके भाग्य में निश्चय ही कोई राजयोग है। अब तक ऐसा सुन्दर कोई भी युवक मेरी दृष्टि में नहीं आया है। ऐसा लगता है कि शिव जी के तीसरे नेत्र से दग्ध हुआ कामदेव फिर जीवित हो गया है। अब रति को विलाप न करना होगा। इसके अंगों का सन्निवेश मेरे हृदय को खींच रहा है। मेरे पिता जी सौ प्रयत्न करने पर भी मुझे ऐसा सुन्दर वर प्राप्त नहीं करवा सकते हैं। मैंने इसे अपना पति वर लिया। मेरी पार्वती पूजा सफल हो गई। भला इसकी जेब में यह क्या है? यह गहरी नींद में है, अतः कोई डर की बात नहीं है। देखती हूँ। [चतुराई से पत्र को निकाल कर] अच्छा यह कोई पत्र है। पढ़ती हूँ इस में क्या लिखा है। [पल भर पढ़ कर सुन्न हुई, तर्जनी को मुख में रख कर] हाय, हाय! पिता ने मेरे भाई को इसे मार देने को कहा है? हाय! मेरा पिता तो क्रूर है। इसे मैं मन से अपना पति स्वीकार कर चुकी हूँ। अब मैं इसकी रक्षा करूँगी। पर इस आपत्ति से इसे कैसे बचाऊँगी। [पल भर सोच कर] अच्छा, उपाय मिल गया। इस पत्र को फाड़ कर पिता की ओर से दूसरा पत्र लिख देती हूँ। "मेरे आने से पहले कल्पना का विवाह इस युवा के साथ कर दिया जाय" इस प्रकार इसके प्राण बच जाएंगे और मेरा अभीष्ट भी पूरा हो जायेगा। [फिर दूसरा पत्र लिख कर उसकी जेब में डाल देती है। तदनन्तर केतकी का फूल लेकर युवक के दाएं हाथ से छुआ कर वेणी में लगा लेती है और फिर चली जाती है।]

तृणजात—[नींद खुलने पर मन ही मन] अरे! मैं तो बड़ी देर तक सोया हूँ। सूर्य अस्त होने वाला है। मैंने अपरिचित स्थान में जाना है। इसलिये मुझे पल भर भी देर न करनी चाहिये। [उठ कर चला जाता है।]

पर्दा गिरता है

[धनिकेन निर्दिष्टः प्रासादः। प्रवेशद्वारं द्विपुरुषपरिमाणम्। बहिस्तडागे संपतरायसुतः सायंकालीनभ्रमणं करोति। असौ शाटकां धारयति। पादयोः पादुकायुगलम्। आयुषा पञ्चविंशतिवर्षीयः, दीर्घःकायः, श्वेतः वर्णः]

राघवः—[तडागतटे परिभ्रमन् आत्मगतम्] पिता अधमर्णेभ्यो धनं संग्रहीतुमथ च कल्पनायै वरान्वेषणार्थं चिरात्प्रयातो न प्रत्यावर्तते। अद्यत्वे कन्यायै वरान्वेषणं न सुकरम्। अनाचारी युवा चेत्कश्चित् प्राप्तः, कन्यायाः जीवनं दुर्भरम्। यौतुकगृध्नुभ्यः कन्यानां महद् भयम्। तेषां तृष्णैव न शाम्यति। दुर्जना अधिकाधिकवस्तूनि कामयमानाः, नवोढाः प्रताड़यन्ति दहन्ति च। तातः कल्पनासुखमन्विच्छन् सर्वं सुविचार्य करिष्यति। स पदमपि फूत्कृत्य निदधाति। न स क्वापि वञ्चयितुं शक्यः। [अकस्मात्तस्य दृष्टिरागन्तुके पतति। ततः प्रकाशं ब्रूते] भोः भोः कस्त्वम्। इत आयाहि।

तृणजातः—[उपगम्य] अभिवादये अत्रभवन्तम्। अहं संपतरायश्रेष्ठिनो गृहं प्रवेष्टुकामः। कृपया दर्शयतु भवान् मे मार्गम्।

राघवः—परिचयपत्रं धारयसि किम् ?

तृणजातः—आं, श्रेष्ठिमहोदयविलिखितं पत्रमेतत् धारयामि। पश्यतु भवान्। [पत्रं ददाति]

राघवः—[पत्रमादायाधीत्य च [हुं, भवान् अतिथिः। [आत्मगतम्] पित्राऽहमाविष्टस्तदागमनात्पूर्वं कल्पनाया एतेन सह विवाहविधिमनुष्ठातुम्। वस्तुतोऽद्यत्वे युवानः आं कृत्वा पश्चात् नेति कुर्वन्ति। अतस्तातेनाज्ञप्तोऽहं द्रुतं विवाहविधिं पूरयितुम्। अति कमनीयोऽयं युवा। शोभनं चयनम्। मातुरनुमतिमादाय पित्रादेशः पालनीयः। [प्रकाशं ब्रूते] आयातु भवानितः।

[तृणजातमन्तः प्रवेशयति]

[ततः वासन्ती राघवश्च प्रविशतः]

[साहूकार से बताया घर। प्रवेश द्वार दो पुरुष ऊँचा है। बाहर तालाब पर संपतराय का लड़का सायंकाल का भ्रमण कर रहा है। उसने धोती पहन रखी है। पैरों में चप्पल है। आयु पच्चीस वर्ष के लगभग है। लम्बा शरीर और श्वेत वर्ण]

राघव—[तालाब पर घूमता हुआ मन ही मन] पिता जी कर्जदारों से धन लेने तथा कल्पना के लिये वर की खोज में देर से गये हैं, अभी लौटे नहीं। आजकल कन्या के लिये वर की खोज करना कोई सुगम बात नहीं है। यदि कोई आचरणहीन लड़का मिल गया तो कन्या का जीना भी कठिन। दहेज के लोभियों से कन्याओं को भारी भय है। उनकी तृष्णा ही शान्त नहीं होती है। अधिक से अधिक वस्तुओं को चाहते हुए दुल्हनों को ताड़ते हैं और जला देते हैं। पिता कल्पना के सुख की इच्छा से सब कुछ सोच-समझ कर करेंगे। वह पैर भी फूंक मार कर रखते हैं। उन्हें कहीं भी ठगा नहीं जा सकता है। [अचानक उसकी दृष्टि आगन्तुक पर जाती है तो बोलता है]—अरे! आप कौन हो? इधर आओ।

तृणजात—आप को नमस्कार हो। मैं संपतराय साहूकार के घर जाना चाहता हूँ। कृपा करके मुझे रास्ता बता दो।

राघव—क्या आपके पास कोई परिचय-पत्र है ?

तृणजात—हां, मेरे पास साहूकार का लिखा पत्र है। आप देख लीजिये। [पत्र को दे देता है।]

राघव—[पत्र को लेकर और पढ़ कर] अच्छा, आप अतिथि हैं। [मन ही मन में] पिता ने मुझे अपने आने से पहले ही कल्पना का इस के साथ विवाह करने को कहा है। असल में आजकल युवक "हाँ" करके फिर "न" कर देते हैं। इसी लिये पिता ने मुझे शीघ्र परिणय कार्य के लिये लिखा है। यह युवक बहुत सुन्दर है। चुनाव बहुत अच्छा है। माता की अनुमति लेकर पिता की आज्ञा का शीघ्र पालन किया जाना चाहिये। [सामने] आप इधर आइये। [तृणजात को अन्दर ले जाता है।]

[फिर वासन्ती और राघव प्रवेश करते हैं]

राघवः—मातः ! किमनुमन्यते भवती वरमिमं कल्पनायै ?

वासन्ती—पुत्र ! शोभनोऽयं वरः कल्पनायै । युवा आकृत्या भाग्यवानुपलक्ष्यते । पिता ते कदाऽऽयास्यति ?

राघवः—पित्राहमादिष्टस्तवागमनात्पूर्वमेव कल्पनाया एतेन सह पाणि-पीड़नाय । अतो भवती विवाहसंभारानायोजयतु । अहमपि स्वकृत्य-मवधारयामि ।

वासन्ती—तथास्तु ! श्रेयांसि बहुविघ्नानि । अतो न विलम्बो विधेयः ।

[उभौ गच्छतः]

यवनिकापातः

[नेपथ्ये विवाहमंत्रोच्चारणं महिलानां गीतानि च श्रूयन्ते]

संपतरायः—[गृहं प्रत्यागच्छन् मार्गे आत्मगतम्] आशासे स कंटको राघवेण विषं दत्वा यमपुरं प्रेषितः । ममेच्छाविपरीतं मे दुहितरं क उद्वोढुं प्रभवति । नैतच्छक्यम् । नियतेः गर्वोऽपि प्रणष्ट एवेति जानामि । रत्नसारनगर्यां यो युवा मया दृष्टः स कल्पनाया अनुकूलो वरः । यद्यपि स न रूपवान् धनवाँस्तु भवत्येव । धनेन विना जीवनं शून्यम् । यतो हि—

क्लिश्यन्ति रूपवन्तोऽपि धनहीनाः पदे पदे ।
रूपेण नेत्रयोस्तृप्तिर् न क्षुधा तेन शाम्यति ॥ २२ ॥

(अनुष्टुप्)

वासन्त्या, राघवेण सुजातया च परामर्शं विधाय कुलपुरोहितं प्रेषयित्वा मुहूर्तं पश्यामः । समीपे एव साम्प्रतं मे प्रासादः । राघवः सायं तडागे भ्रमणाय समायाति । पश्यामि तावत् [किञ्चिदग्रतो गत्वा नवोढ़ापरिवेषं धारयन्त्या दुहित्रा सह विहरन्तं तृणजातमालोक्य सर्प इव श्वसन् मूर्छितो निपतति ।]

राघव—माता जी ! क्या आपकी समझ में कल्पना के लिये यह वर अनुकूल है ?

वासन्ती—पुत्र, कल्पना के लिये यह वर बहुत ही अच्छा है। युवक आकृति से भाग्यवान जान पड़ता है। आप के पिता कब आ रहे हैं ?

राघव—माता जी, पिता ने मुझे अपने आने से पहले ही इसके साथ कल्पना का विवाह कर देने को लिखा है। इसलिये आप विवाह के लिये अपेक्षित सामग्री को जुटाने में लग जाएं। मैं भी अपने काम को देखता हूँ।

वासन्ती—ठीक है। भले काम में विघ्न बहुत होते हैं। इसलिये देर न की जानी चाहिये। [दोनों चले जाते हैं।]

[नेपथ्य में विवाह के मंत्र और स्त्रियों के गीत सुनाई देते हैं।]

संपपराध—[घर को लौटता हुआ मन ही मन] आशा है, उस कंटक को राघव ने विष देकर मसल दिया होगा। मेरी इच्छा के विपरीत मेरी पुत्री से कौन विवाह कर सकता है। यह संभव नहीं। नियति का घमंड भी टूट गया। रत्नसार नगर में मैंने जिस युवक को देखा है वह कल्पना के लिये अनुकूल वर है। यद्यपि वह सुन्दर नहीं धनवान तो है ही। धन के बिना जीवन शून्य है। क्योंकि :—

न रूप देखे मिटती क्षुधा है—हां प्यास भागे कुछ लोचनों की।
पैसा मिटाए जब भूख आए—है रूप छोटा धन ही बड़ा है ॥ २६ ॥
(उपजाति)

वासन्ती, सुजाता और राघव से परामर्श करके कुल-पुरोहित को भेज कर मुहूर्त देखते हैं। मैं अपने महल के पास ही पहुँच गया हूँ। राघव सायंकाल तालाब पर भ्रमण करने आता है। मैं देखता हूँ। [कुछ आगे जाकर तालाब के तट पर नई दुल्हन के भेष में अपनी पुत्री के साथ घूमते हुए तृणजात को देख कर डंडे से प्रताड़ित सांप के समान सांस भरता हुआ मूर्छा खा कर गिर जाता है।]

वीआयामि भवन्तम् ।

राघवः—[प्रविश्य] तात, तात ! का वार्ता ? एषोऽहम् । क्लान्तो भवान् सर्वं दिनं परिभ्रमन् । व्यजनं करोमि । [तृणजातः कल्पना चापि समीपमायातः । कल्पना मौनमास्थाय दुकूलेन वायुं करोति मुखे च जलबिन्दून् निपातयति । तृणजातस्तूष्णीं पश्यति ।]

रेण

संपतरायः—[चेतनामवाप्य कम्पमानस्वरे] राघव ! मया यत्पत्रं प्रहितं तत् कुत्र वर्तते ?

राघवः—स्वस्था भवन्तु भवन्तः । अहं पत्रमानयामि । [गच्छति]

कल्पना—[तृणजातं प्रति नीचैः स्वरेण] स्वस्थः साम्प्रतं तातः । आवामन्तः प्रविशावः ।

तृणजातः—यथा भवती मन्यते । [उभौ गच्छतः]

राघवः—[पुनः प्रविश्य] तात, एतत्पत्रम् । गृह्णातु भवान् । अहं तावन्मातरं पश्यामि । [निर्याति]

संपतरायः—[पत्रं पठित्वात्मगतम्] धृष्टेन तृणजातेन विपरीतं विलिख्य एषोऽनर्थः कृतः । शूलं पादेऽप्यसह्यम् । एतत्तु हृदि, कथं सहिष्ये । यतो हि—

वारद्वयं यस्य वधं विधातुं कृतः प्रयत्नो विफलः प्रजातः ।
मम प्रतिष्ठाविपरीतमेनं कथं सहिष्ये तनयापतित्वे ॥ २३ ॥

कामं भवतु मे पुत्री विधवा । एनं विषदन्तमुन्मूल्यैव मनः शान्तं भविष्यति । [क्षणं विचिन्त्य] अस्तु, लब्ध उपायः । ममाधमर्णो मायाधारी कुम्भकारः प्रकामं कुटिलः । तेन × दायादलोभे स्वसहोदरो निहत इति किम्वदन्ती प्रचलति । तमुपयामि । स नूनमेनं हनिष्यति । [निर्गच्छति]

× दायलोभेन

यवनिकापातः

[मायाधारिणः कुम्भकारस्य गृहम् । यत्र तत्र मृत्पात्राणि अव्यवस्थितानि वर्तन्ते । एकतः सदण्डं चक्रम् । अपरतः पात्रेषु रेखानिर्माणाय तूलिका । हरितपीतरक्तनीलराग-

राघव—[प्रवेश कर] पिता जी, पिता जी, क्या बात है? मैं यह हूँ। आप सारा दिन घूमते-घूमते थक गये हैं। मैं पंखा करता हूँ। [तृणजात और कल्पना भी पास आ जाते है। कल्पना चुपचाप दुपट्टे से हवा करती है और मुंह में पानी की बून्द गिराती है। तृणजात चुपचाप देखता है।]

संपतराय—[चेतना में आकर कांपते स्वर में [राघव, मैंने जो पत्र भेजा था वह कहां है?

राघव—आप स्वस्थ हों, मैं पत्र को लाता हूँ [चला जाता है।]

कल्पना—[तृणजात के प्रति धीमे स्वर में] पिता अब स्वस्थ हैं। चलो हम अन्दर चलें।

तृणजात—जैसा आप ठीक समझती हो [दोनों चले जाते हैं]।

राघव—[फिर प्रवेश कर] पिता जी वह पत्र यह है। आप ले लीजिये। मैं तब तक माता को देखता हूँ। [चला जाता है]

संपतराय—[पत्र पढ़ कर मन ही मन] धृष्ट तृणजात ने उल्टा लिख कर यह अनर्थ कर दिया। कांटा पैर में सहन करना कठिन होता है। यह तो हृदय में है। कैसे सहन करूँगा। क्योंकि :—

हत्यार्थ मैंने जिस की किया है प्रयास दो बार न सिद्धि पाई।
कैसे प्रतिष्ठा विपरीत मानूं जामात ऐसे खल को भला मैं ॥ २७ ॥

(उपजाति)

मेरी पुत्री भले ही विधवा हो जाय। इस विषवृक्ष को उखाड़ कर ही मन शान्त होगा। [पल भर सोच कर] अच्छा उपाय मिल गया है। मेरा कर्जदार घुमार मायाधारी बहुत ही कुटिल है। उसने जायदाद के लालच में अपने भाई को मार दिया था ऐसी किंवदन्ती सुनी जाती है। उसके पास जाता हूँ। वह निश्चय ही इसे मारने का कोई रास्ता निकाल लेगा। [चला जाता है]

पर्दा गिरता है

[मायाधारी घुमार का घर। जहां-तहां मिट्टी के वर्तन बिखरे पड़े हैं। एक ओर दण्ड और चक्र है। दूसरी ओर पात्रों पर चित्र खींचने के लिये तूलिका पड़ी है। काला, हरा, नीला और लाल रंग

सुविधा शोभना विधा भवति न तु लौकधर्मः।

पुटिकाः। पात्रनिर्माणाय जलक्लिन्नां मृत्तिकां मायाधारी भृशं मर्दयति, तूलं मिश्रितं कुरुते, ततः पुनः पुनरुत्थाप्य चक्रमध्ये क्षिपति।]

संपतरायः—भोः मायाधारिन्! किमनुष्ठीयते त्वया? नावलोकितश्चिरात्त्वम्। को हेतुः?

मायाधारी—[नमस्कृत्य] श्रेष्ठिन्, भवच्चरणयोः कोऽपि रिक्तहस्त उपस्थातुं न प्रभवति। पात्राणि निर्मीयन्ते मया। पाकानन्तरं वर्षस्य कुसीदं दास्यामि।

संपतरायः—परं मया तु भवान् कदापि न क्लेशितः। यदा ते सुविधा भविष्यति तदा देयम्।

मायाधारी—[आत्मगतम्] अद्य त्वेतस्य व्यवहारोऽतिमधुरो दृश्यते। न जाने किं रहस्यम्। [प्रकाशम्] महती अनुकम्पा वर्तते। अस्ति कश्चिदादेशश्चेदुच्यताम्।

संपतरायः—अस्त्येकं रहस्यं वक्तुम्।

मायाधारी—वदतु भवान्। नान्यः कश्चिदत्र विद्यते।

संपतरायः—भ्राष्ट्रेऽनलं कदा दास्यसि?

मायाधारी—श्वः सायंकाले।

संपतरायः—[मन्दस्वरे] प्रातर् मे सदनात् यः कश्चित्ते गृहं समायास्यति स व्याजेन भाण्डानलागारे प्रक्षेप्तव्यो येन स दग्धः स्यात्।

मायाधारी—लोकाश्चेज्जानीयुः?

संपतरायः—लोकाः कथं ज्ञास्यन्ति। अम्बरीषं [भ्राष्ट्रः] मृदा नाच्छाद्यते?

मायाधारी—आं तत्तु क्रियते। परं चेद् दुर्गन्धेन ज्ञातं स्यात्?

संपतरायः—[मुद्राशतकं निष्कास्य] आदेहि मुद्राशतम्। एतेन बहुलं कर्पूरं सुगन्धद्रव्याणि च क्रीत्वा भाण्डानलागारे प्रक्षिप। दुर्गन्धः सुगन्धे परिणेष्यति।

भी रखे हुए हैं। पात्र निर्माण के लिये पानी से भीगी मिट्टी को मायाधारी लगातार मसलता है, उसमें रूई मिलाता है और फिर उसे बार-बार उठा कर चक्र के मध्य में फेंकता है।]

संपतराय—[प्रवेश कर] अरे मायाधारी, क्या कर रहे हो? बड़ी देर से तुम मिले नहीं।

मायाधारी—[नमस्कार करके] महाराज, आपके चरणों में खाली हाथ कौन जा सकता है? मैं भाण्डे तैयार कर रहा हूं। पकने के बाद बेच कर वर्ष भर का ब्याज दे दूंगा।

संपतराय—पर मैंने तो आपको कभी तंग न किया है। जब सुविधा होगी तब दे देना।

मायाधारी—[मन ही मन] आज तो इसका व्यवहार बहुत ही मधुर है। पता नहीं क्या रहस्य है। [सामने] आपकी बड़ी कृपा है। कोई सेवा है तो बताइये।

संपतराय—हां, एक गुप्त बात बताने को है।

मायाधारी—आप कहिये। यहां और कोई भी नहीं है।

संपतराय—भट्ठी में आग कब दे रहे हो?

मायाधारी—कल सायं को।

संपतराय—[मन्द स्वर में] कल प्रातःकाल मेरे घर से जो आदमी सर्वप्रथम तेरे घर आएगा उसे भट्ठे में फेंक देना जिससे वह जल कर मर जाय।

मायाधारी—अगर लोगों को पता लग जाय?

संपतराय—लोगों को पता कैसे लगेगा। भट्ठे को मिट्टी से ढक न दिया जाता है?

मायाधारी—हां, यह तो ठीक है। परन्तु यदि दुर्गन्ध से पता चल जाय?

संपतराय—[एक सौ रुपया निकाल कर] यह लो सौ रुपया। इससे बहुत सा कपूर और सुगन्धित वस्तुएं लेकर भट्ठी में रख देना। दुर्गन्ध सुगन्ध में बदल जायगी।

मायाधारी—[मुद्राशतमादाय] अथ चेदहमागसि निगृहीतः स्याम् ?

संपतरायः—हुं मूढ, एतदपि भीतिकारणं किम् ?

मायाधारी—अथ किम् ?

संपतरायः—अद्यत्वे उत्कोचस्यैकच्छत्रं साम्राज्यं वर्तते । अत एवं सति धनबलेन त्वामुन्मोचयिष्ये ।

मायाधारी—अङ्गीकृतं मया ।

संपतरायः—अस्मिन् कर्मणि सफलश्चेत्त्वं वर्षस्य कुसीदादुन्मुक्तं करिष्ये ।

मायाधारी—अस्तु तावत् । [उभौ निर्गच्छतः]

यवनिकापातः

[ततः संपतरायस्तृणजातश्च प्रविशतः]

संपतरायः—तृणजात ! त्वया प्रातरेव भोजग्रामवास्तव्यमायाधारिकुम्भकारस्य गृहं प्रस्थातव्यम् ।

तृणजातः—पितः, कियानध्वा भोजग्रामस्य ?

संपतरायः—[पितृशब्देन किंचित् क्षुब्धः] गव्यूतिमात्रम् ।

तृणजातः—मयासौ किं वाच्यः ?

संपतरायः—स मया तमालपात्रार्थमुक्तः । तत्त्वयानेयम् । मृत्पात्रे धूम्रपानस्य यो रसः स रजतसुवर्णपात्रयोरपि न सुलभः । अथ चेत्स किंचित् कुसीदधनं ददाति तदप्यानेतव्यम् ।

तृणजातः—भवदादेशः शिरोधार्यः । सादरं पालयिष्ये ।

[उभौ गच्छतः]

[तृणजातः प्रातरुत्थाय भोजग्रामं प्रचलति । यदा स स्वल्पमेव वर्त्म प्रयाति, अग्रतश्चतुष्पथे दुग्धमानयन् राघवो मिलति ।]

राघवः—तृणजात ! क्व प्रयाति भवान् ?

मायाधारी—[सौ रुपया लेकर] यदि मैं अपराध में पकड़ा जाऊं ?

संपतराय—हूँ मूर्ख, यह भी कोई डर का कारण है ?

मायाधारी—और क्या ?

संपतराय—आज रिश्वत का एकछत्र राज्य है। ऐसा होने पर मैं पैसे के बल से तुम्हें छुड़ा लूंगा।

मायाधारी—स्वीकार है।

संपतराय—यदि इस काम में तुम सफल हो गये तो ब्याज से तुम्हें छूट मिल जायगी।

मायाधारी—ठीक है। [दोनों चले जाते हैं।]

पर्दा गिरता है

[फिर संपतराय और तृणजात प्रवेश करते हैं]

संपतराय—तृणजात, तुम्हें कल प्रातः ही भोज ग्राम में मायाधारी घुमार के पास जाना होगा।

तृणजात—पिता जी, भोज ग्राम कितनी दूर है ?

संपतराय—[पिता शब्द से कुछ क्षुब्ध हुआ] केवल दो कोस ?

तृणजात—वहां मुझे क्या संदेश ले जाना है ?

संपतराय—मैंने मायाधारी को हुक्के के लिये कहा है, उसे लेते आइये। मिट्टी के हुक्के में जो धूम्रपान का रस है वह सोने और चांदी के हुक्कों में भी न मिलता है और वह कोई ब्याज का पैसा दे तो उसे भी लेते आइये।

तृणजात—आप की आज्ञा का पालन करूंगा।

[दोनों चले जाते हैं]

[तृणजात प्रातःकाल भोजग्राम को जा रहा है। आगे थोड़ी दूर चौराहे में दूध लाता हुआ उसे राघव मिलता है]

राघव—तृणजात, आप कहां जा रहे हो ?

तृणजातः—तातात्मजन्तो भोजग्रामे मायाधारिकुलालालयं गच्छामि ।

राघवः—किमर्थम् ?

तृणजातः—मृदस्तमालपात्रार्थमथ च कुसीदधनं समाहर्तुं चेद्ददाति सः ।

राघवः—नवागन्तुको भवान्, न युक्तं तत्र भवतः प्रयाणम् । पश्यतु—

भवन्ति कुक्कुरास्तत्र मार्गश्च वक्रतां गतः ।
अहमेव प्रयास्यामि निवर्तस्व निकेतनम् ॥ २४ ॥

तृणजातः—कच्चित् तातः कुपितः स्यात् ?

राघवः—त्वयि मयि च किमन्तरम् । आदेहि दुग्धपात्रम् । गच्छ प्रासादान्तः अहं मध्याह्नात्पूर्वं प्रत्यावर्तिष्ये ।

तृणजातः—यथा भवान् मन्यते । [इति दुग्धपात्रमादाय प्रासादान्तः गच्छति । राघवश्च भोजग्रामं प्रयाति]

संपतरायः—(प्रविश्य भृत्यमाह्वयति) गोपाल, अरे गोपाल ! क्वासि त्वम् । आयाहि द्रुतम् ।

गोपालः—[प्रविश्य प्रणम्य च] अयमस्मि श्रीमन्तः, आदिशतु भवान् मे करणीयम् ।

संपतरायः—आह्वय राघवम् । अपरिहार्यं कार्यं वर्तते ।

गोपालः—यथा भवानाज्ञापयति । [इति गच्छति] ।

संपतरायः—[इतस्ततः परिभ्रमन्नात्मगतम्] बहु दुखं भुक्तं मया । अद्य मे व्यथाया नूनमुपरामः । मायाधारी यत्र सहायकस्तत्रान्तरायस्य न कश्चित् प्रश्नः । स खलु मे हृदः शूलमुत्पाट्य चन्दनालेपमिवाधाय मनः शान्तं करिष्यति । न केवलं कुसीदादपि तु मूलधनादपि तमुन्मुक्तं करिष्यामि । कल्पनायाः पुनर्विवाहं करिष्यामि । विधुरश्चेद् द्वितीयविवाहं कर्तुमर्हति कथं न विधवा ।

तृणजात—पिता की आज्ञा से भोजग्राम में मायाधारी के पास।

राघव—किस लिये ?

तृणजात—मिट्टी का हुक्का तथा ब्याज की राशि लाने के लिये।

राघव—आप अभी अपरिचित हैं। आपका वहां जाना ठीक न है। क्योंकि :—

कुत्ते बड़े हैं उनके घरों में रास्ता न आसान मिले किसी को।
जाऊँ वहाँ मैं स्वयमेव भाई लौटो यहीं से घर को पधारो ॥२८॥

(इन्द्रवज्रा)

तृणजात—पिता जी कहीं नाराज़ न हों ?

राघव—तेरे और मेरे में क्या अन्तर है ? यह लो दूध का बर्तन और महल के अन्दर चले जाओ। मैं दोपहर से पहले ही लौट आऊँगा।

तृणजात—जैसा आप ठीक समझते हैं। [दूध का बर्तन लेकर महल के अन्दर चला जाता है और राघव भोजग्राम के लिये निकल जाता है।]

संपतराय—[प्रवेश कर नौकर को बुलाता है] गोपाल, रे गोपाल! तुम किधर हो ? जल्दी इधर आओ।

गोपाल—[प्रवेश कर और प्रणाम कर] श्रीमान् जी, मैं यह हूँ। आज्ञा कीजिये।

संपतराय—राघव को बुलाओ ! बहुत जरूरी काम है।

गोपाल—जैसे आपकी आज्ञा। [चला जाता है]

संपतराय—[इधर उधर घूमता हुआ मन ही मन] मैंने बहुत दुःख झेला है। आज मेरे संकट का निश्चय ही अन्त हो जायगा। मायाधारी जहां सहायक है वहां विघ्न होने का कोई भय नहीं। वह मेरे हृदय के कांटे को निकाल कर चन्दन का लेप जैसा करके मेरे मन को शान्त कर देगा। केवल ब्याज से ही नहीं मैं उसे मूलधन से भी मुक्त कर दूंगा। कल्पना का दूसरा विवाह कर दूंगा। यदि एक विधुर दूसरा परिणय कर सकता है तो विधवा क्यों नहीं कर सकती ?

गोपालः—[पुनः प्रविश्य] महाराज, राघवस्तु गृहे न वर्तते ।

संपतरायः—क्व गतोऽसौ ?

गोपालः—कल्पना भाषते, स भोजग्रामे मायाधारिणो गेहं प्रयातः ।

संपतरायः—[आपादमस्तकं तापमनुभवन्] हुं, राघवो भोजग्रामं गतः ? कियान् समयः संजातः ?

गोपालः—अर्धा कला । [इत्युक्त्वा अन्तः प्रविशति] ।

संपतरायः—[चिन्तानलेनान्तरेव दह्यमानः आत्मगतम्] किं मायाधारी मे पुत्रं भ्राष्ट्रे प्रक्षेप्स्यति ? मया किमुक्तम् । [क्षणं विचिन्त्य] यः कश्चिन्मे सदनात्ते गेहं समायास्यति । अयि मे मनः ! किमर्थं मां प्रताडयसि, किममङ्गलं चिन्तयसि ? मायाधारी मे पुत्रं परिचिनोति । स नैवंविधदुस्साहसमाचरिष्यति । परं मया यः कश्चित् .... । स नूनं तमनलागारगं करिष्यति । हा ! एक एव मे सूनुः । तनये हते सम्पदा मे किं प्रयोजनम् ? अहो नियते ! त्वं बलवती । रक्ष रक्ष ममात्मजम् । हा, हन्त ! हतो मे तनयः । [रोदिति] अस्तु धावित्वा तत्र गच्छामि । किं प्रक्षेपणात्पूर्वमहं तत्र प्राप्स्यामि ? अस्तु, प्रयते । नियते ! त्रायस्व त्रायस्व मे सुतम् । [ततो धावति] राघव, अरे राघव ! मा प्रयाहि द्रुतं वत्स । अहं तेऽनुपदमेवायामि । पुत्र ! प्रतीक्षस्व माम् । [नेत्रयोः अश्रूणि प्रोंच्छन् यथाशक्यं द्रुतं धावति]

धावित्वा ... तु मुक्तव्यं स्यात् । ... नयनयोः अश्रूणि ... पूर्वकाल ... नास्ति ।

यवनिकापातः

मायाधारी—[प्रविश्य आत्मगतम्] धनिकात्मजो राघवः प्राप्तः । न वेद्मि सम्पतरायः किं निमित्तमेनं हन्तुं मां प्रेरितवान् । पितृपुत्रयोरेवं-विधघोरवैमनस्यं कथं जातम् । संसारस्य विचित्रा गतिः । यतो हि—

कुर्वन्ति केचिद्वनगास्तपस्यां पुत्रानवाप्तुं विविधैरुपायैः ।
तानेव हन्तुं त्वपरे प्रवृत्ताः संसार ! खेला किल तेऽद्भुतैव ॥ २५ ॥

(इन्द्रवज्रा)

गोपाल--[फिर प्रवेश करके] महाराज, राघव तो घर पर न है।

संपतराय—वह कहां गया है ?

गोपाल—कल्पना कहती है, वह भोजग्राम में मायाधारी के घर गया है।

संपतराय—[सिर से पैर तक ताप का अनुभव करता हुआ आश्चर्य के साथ] हैं ! राघव भोजग्राम गया है ? कितना समय हो गया ?

गोपाल—आध घण्टा। [ऐसा कह कर चला जाता है]

संपतराय—[चिन्ता की आग से अन्दर ही अन्दर जलता हुआ मन ही मन] क्या मायाधारी मेरे पुत्र को भट्ठे में फेंक देगा ? मैंने भला क्या कहा था ? [पल भर सोच कर] जो कोई मेरे महल से तेरे घर में आएगा। अरे मेरे मन, मुझे क्यों लताड़ रहे हो। मायाधारी मेरे पुत्र को जानता है। वह ऐसा दुस्साहस न करेगा। परन्तु मैंने जो कोई ...... । वह निश्चय ही उसे फेंक देगा। हाय, मेरा एक ही पुत्र है। पुत्र के मर जाने पर मैं सम्पत्ति से क्या करूंगा। ओ होनहार ! तूं बलवान है। मेरे पुत्र को बचा ले। हाय, मेरा पुत्र मारा गया। [रोता है] अच्छा, दौड़ कर वहां जाता हूं। क्या फेंकने से पहले मैं वहां पहुंच जाऊंगा ? अच्छा, यत्न करता हूं। [फिर दौड़ता है] राघव, ओ राघव ! जल्दी मत चलो बेटे। मैं तेरे पीछे ही आ रहा हूं। मेरी प्रतीक्षा करो।

[नेत्रों से आंसुओं को पोंछता हुआ यथासम्भव शीघ्र दौड़ता हुआ निकल जाता है]

पर्दा गिरता है

मायाधारी—[प्रवेश कर मन ही मन] साहूकार का पुत्र राघव आ गया है। प्रतीत नहीं उसने मुझे इसे मारने के लिये क्यों कहा है। पिता-पुत्र का ऐसा भयानक वैमनस्य कैसे हो गया होगा। संसार तेरी गति विचित्र ही है :—

बैठे तपस्या करते वनों में हों पुत्र जैसे उनके घरों में।
षड्यन्त्र हत्यार्थं करें कुछेक संसार तेरी गति है निराली ॥ २९ ॥

(इन्द्रवज्रा)

अस्तु, अहं तु तेन यथादिष्टस्तथा करिष्यामि । वर्षस्य कुसीवान्मे मुक्तिः । एष एव महाँल्लाभः । परं भाण्डानलागाराभ्यर्णे कथमेनं नेष्यामि । [क्षणं विचिन्त्य] लब्ध उपायः । अपक्वभाण्डानि तत्र प्रापयितुमेतस्य साहाय्यमभ्यर्थ्य समीपे नेष्यामि अवसरं च लब्ध्वा भ्राष्ट्रे प्रक्षेप्स्यामि । यथा वध्यशिलां नीयमानश्छागः स्वमरण-मजानन्नितस्ततो घासचर्वणं करोति तथायमपि स्वान्तमबोधन् मे भार्ययोपहारीकृतं पयः पिबति । अस्तु, आह्वयामि तावदेनं दुष्कर्म पूरयितुम् । [प्रकाशम्] अयि राघव ! आयातु भवानितः कृपया ।

राघवः—[प्रविश्य] ब्रूहि, किमहं करवाणि ।

मायाधारी—यद्यपि भवान् मे उत्तमर्णतनयोऽतश्च मान्यः परं समवयस्कोऽपि भवसीति त्वामहं मित्रमेव मन्ये । अपक्वभाण्डानि मयाऽनलागारं यावन्नेतव्यानि अतो भवानपि अस्मिन् कर्मणि मे सहायको भवेदिति प्रार्थयामि ।

राघवः—कथं न । वद त्वम् । कानि कानि नेतव्यानि ।

मायाधारी—[अंगुल्या दर्शयति] एतानि-एतानि । राघवो भाण्डान्युत्थापयितुं प्रयतते]

संपतरायः—[भ्रान्तः क्लान्तोऽश्रुभिः क्लिन्नमुखः सहसा प्रविश्य]

राघव, अरे राघव ! [स्कन्धात् दुकूलं पतति] आलिङ्ग मां भृशं वत्स । [पुत्रं बाहुमध्ये आदाय आलिङ्गति चुम्बति च । कुलालः सविस्मयं पश्यति]

राघवः—पितः ! का वार्ता ? किमर्थं संभ्रान्तो भवानेवंविधम् ?

संपतरायः—[सगद्गदम्] मामनापृच्छ्य कथमागतस्त्वमत्र ? अत्राऽऽयातुं तु मया तृणजात आदिष्ट आसीत् ।

राघवः—परमपरिच्छिन्नः सः । अहं यद्यागतः काऽऽपत्तिः ?

संपतरायः—त्वं प्रयाहि गृहम् । वासन्ती सुजाता च त्वां प्रतीक्षेते ।

राघवः—यथा भवानाज्ञापयति । [इति निर्याति]

अच्छा, मुझे तो जैसा उसने कहा है वैसा करना ही है। साल भर के ब्याज से छुटकारा मिल जायगा, यही बड़ा लाभ है। पर इसे भट्ठी तक कैसे ले जाऊँगा। [पल भर सोच कर] अच्छा उपाय मिल गया है । कच्चे भांडों को वहां तक पहुँचाने में इसकी सहायता ले कर भट्ठे के पास ले जाऊँगा और अवसर देख कर बीच गिरा दूंगा। जैसे वध्यशिला को ले जाया जा रहा बकरा अपनी मृत्यु को न जानता हुआ इधर उधर से घास खाता है उसी प्रकार यह भी अपने अन्त को न जानता हुआ मेरी पत्नी से दिये दूध को पी रहा है। अच्छा, अब इस कुकर्म को पूरा करने के लिये इसे बुलाता हूँ। [सामने] राघव जी, कृपा करके इधर आइये।

राघव—बोलो, मुझे क्या करना है।

मायाधारी—यद्यपि तुम मेरे साहूकार के पुत्र हो और इसी लिये मान्य हो परन्तु मेरी सम उमर के भी हो इसलिये मैं आपको अपना मित्र ही मानता हूँ। कच्चे वर्तन भट्ठे तक ले जाने में आप मेरी सहायता करें तो बड़ी कृपा होगी।

राघव—क्यों नहीं। बोलो कौन-कौन ले जाने हैं।

मायाधारी—[उंगली से दिखाता है] यह यह। [राघव भाण्डे उठाने का यत्न करता है]

संपतराय—[आंसुओं से भीगे मुख वाला भ्रान्त, क्लान्त अचानक प्रवेश करके] राघव, ओ राघव! [कन्धे से दुपट्टा गिर जाता है] बच्चे, मेरे से मिलो। [पुत्र को भुजाओं में लेकर मिलता है और चूमता है। घुमार अचम्भे के साथ देखता है]

राघव—पिता जी, क्या बात है? आप इस प्रकार व्याकुल क्यों हो रहे हो?

संपतराय—[रुके गले से] आप मेरे पूछे बिना यहां कैसे आ गये? इधर आने के लिये तो मैंने तृणजात को कहा था।

राघव—परन्तु वह अभी अपरिचित है। यदि मैं आ गया तो क्या हानि हुई?

संपतराय—तुम घर चले जाओ। तुम्हारी माता और सुजाता तेरी प्रतीक्षा में हैं।

राघव—जैसे आपकी आज्ञा। [चला जाता है]

संपतराय:—[राघवे गते मायाधारिणं प्रति] भोः मायाधारिन् ! न केवलं कुसीदादपि तु मूलधनादपि त्वं विमुक्तः। अद्यारभ्य नाहं निर्धनानाबद्धदासतायां निभन्त्स्यामि इति मे प्रणः।

मायाधारी—कृतज्ञोऽहम् अत्रभवतः। [आत्मगतम्] अकर्मणैव पुरस्कृतोऽहं भाग्यवान्। गर्ते पतन्त्वेते दुर्जनाः।

यवनिकापातः

[ततः प्रविशन्ति—संपतरायः, वासन्ती, राघवः, सुजाता, कल्पना, तृणजातश्च]

संपतराय:—[वासन्तीं प्रति] प्रिये मया नियतिं जेतुं महत् प्रयतितम्। परं सा जिता अहञ्च पराजितः। पश्य—

संसारोऽयं नियतिवशगो लक्ष्यते पूर्वकालाद्
भाग्ये तक्रं भवति लिखितं दुग्धमाप्तं कुतः स्यात् ?
रंका दृष्टाः प्रभुपदगता भूभृतो भ्रष्टराज्या
भाले रेखां विधिविलिखितां प्रोज्झितुं कः क्षमः स्यात् ॥ २६ ॥

(मन्दाक्रान्ता)

वासन्ती—भर्तः ! नियतिकृतं सर्वमङ्गीकरणीयम्। तत्र न विकल्पः।

संपतराय:—[कल्पनायाः शिरसि हस्तं कृत्वा] पुत्रि ! चिरं सुखमाप्नुहि स्वभर्त्रा तृणजातेन सह।

कल्पना—तात ! भवत आशिषः फलदाः सन्तु।

संपतराय:—[तृणजातस्य पृष्ठे स्वकरं धारयन्] वत्स ! चिरायुराप्नुहि। त्वं मे जामाता। भाग्यशालिनी मे तनया त्वां भर्तारमाप्त्वा।

तृणजातः—तात ! अहं सर्वदा भवदादेशं पालयिष्यामि।

संपतराय:—[राघवं प्रति] पुत्र राघव ! एकलस्त्वं मे सुतः। तृणजातस्ते भ्रातृसम आवृत्तः। अनुमन्यसे चेद्, दायादार्धभागमेतस्मै प्रयच्छाम्यहम्। युवां प्रेम्णा भुंक्तं मे संपदम्।

संपतराय—[राघव के चले जाने पर मायाधारी के प्रति] अरे मायाधारी ! केवल ब्याज से नहीं बल्कि मूलधन से भी तुम्हें छूट है। आज से लेकर मैं निर्धनों को बन्धुआ मजदूरी में न बांधूंगा। यह मेरी प्रतिज्ञा है।

मायाधारी—मैं आपका कृतज्ञ हूँ। [मन ही मन] विना काम के ही मुझे पुरस्कार मिल गया। यह दुष्ट भाड़ में जाएं।

पर्दा गिरता है

[फिर वासन्ती, संपतराय, सुजाता, राघव, कल्पना और तृणजात प्रवेश करते हैं]

संपतराय—[वासन्ती के प्रति] प्रिये, मैंने नियति [होनहार] को जीतने का भारी प्रयत्न किया। परन्तु वह जीत गई और मैं हार गया। देखो :—

सृष्टी सारी नियति वश में हाथ खेले इसी के
सूखी रोटी जिस कर लिखी दूध पाए कहां से।
राजे देखे वन भटकते रंक राजा पदों में
जो जो माथे विधि विलिखया ना मिटाये मिटे जी ॥ ३० ॥

(मन्दाक्रान्ता)

वासन्ती—भर्ता, होनहार से प्राप्त सब स्वीकार करना होता है। इसका कोई विकल्प नहीं।

संपतराय—[कल्पना के सिर पर हाथ रख कर] पुत्री, अपने पति तृणजात के साथ चिरकाल तक सुख पाओ।

कल्पना—पिता जी, आपके आशीर्वाद सहायक हों।

संपतराय—[तृणजात की पीठ पर हाथ रखता हुआ] वत्स, तुम्हारी लम्बी आयु हो। आप मेरे जामाता हैं। आप जैसे पति को पाकर मेरी पुत्री भाग्यशालिनी है।

तृणजात—पिता जी, मैं सदा आपकी आज्ञा में रहूँगा।

संपतराय—[राघव के प्रति] पुत्र राघव, तुम एकमात्र मेरे पुत्र हो। तृणजात भाई के समान तुम्हारा बहनोई है। यदि आप सहमत हों तो मैं अपनी जायदाद का आधा भाग इसे देता हूँ। आप दोनों प्रेम से मेरी सम्पत्ति का उपभोग करें।

राघवः—शोभनं तात, शोभनम्। अङ्गीकृतं भवद्वचनम्।

संपतरायः—[पुत्रवधूं प्रति] सुजाते! किं तेऽपि रोचते इदम्?

सुजाता—पितृदेव! कल्पनां प्राणेभ्योऽपि प्रियां मन्ये। अतिरोचते मे भवद् वचनम्। [नमस्करोति]

सर्वे प्रयान्ति

भरतवाक्यम्

या दासता जीवनबन्धिनीयं
उत्तरंगाके तेत्यपेक्षते प्रयातु पातालमितः स्वदेशात्।
उत्कोचमार्गञ्च विहाय राष्ट्रं
चकासताम् चकासतामद्य यथैव पूर्वम्॥ २७॥

प्रशासकाः सन्तु चरित्रवन्तः
प्रजाः सुमार्गेण यथा व्रजेयुः।
भ्रष्टैरुपायैर्न धनार्जनं स्यात्
सर्वे स्वदेशे च सुखं लभन्ताम्॥ २८॥

(उपजातिः)

अप्रस्थाने चकारः।

राघव—पिता जी, बहुत अच्छा है। आपका वचन मुझे स्वीकार है।

संपतराय—[सुजाता की ओर] सुजाते ! क्या तुम्हें भी यह स्वीकार है ?

सुजाता—पिता जी, कल्पना को मैं प्राणों से भी प्यारा समझती हूँ। आपने बहुत अच्छा सोचा है। [नमस्कार करती है। सब चले जाते हैं]

भरतवाक्य

है दासता जीवन बन्धिनी जो
पाताल भागे इस देश से जी।
उत्कोच का दूषण दूर जाए
शोभा बढ़े भारत की सदा ही ॥ ३१ ॥
(इन्द्रवज्रा)

चरित्र ऊँचा जब शासकों का
देखे प्रजा तो शुभ मार्ग गाहे।
उपाय ऐसे न करें कभी भी
जो भ्रष्ट होते धन को कमाने ॥ ३२ ॥
(उपजाति)

●

लेखक की अन्य कृतियां :—

१. राष्ट्रपथप्रदर्शनम्—संस्कृत-काव्यम्
(अष्टादश अध्याय)

२. तर्जनी—संस्कृत-काव्यम्
(एकादश अध्याय)

३. मधुवर्षणम्—संस्कृत-काव्यम्
(सप्त सर्ग)

४. वत्सला—संस्कृत-नाटकम्
(षडङ्क)

५. रक्षासंस्कृत-व्याकरणम्—स्नातक कक्षाओं तक के लिये।

६. संस्कृतकल्पतरुः—पाठ्यपुस्तक

अनुवाद साहित्य

७. विक्रमोर्वशीयम्—पहाड़ी भाषानुवाद
(गद्य पद्यात्मक)

८. स्वप्नवासवदत्तम् ,,